आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

जनवरी 2025

क्रान्ति

मासिक

सहयोग राशि
30/-₹

विकास के बरक्स :
कुपोषण का कलंक

“

निश्चय ही जो मर्द और जो औरतें मुस्लिम हैं, मोमिन हैं, आज्ञाकारी हैं, सत्यवादी हैं, धैर्यवान हैं, अल्लाह के आगे झुकने वाले हैं, सदक़ा (दान) देने वाले हैं, रोज़े (व्रत) रखने वाले हैं, अपनी शर्मगाहों (गुप्तांगों) की रक्षा करने वाले हैं, और अल्लाह को ज़्यादा याद करने वाले हैं, अल्लाह ने उनके लिए क्षमादान और बड़ा बदला तैयार कर रखा है।

(क़ुरआन, 33:35)

”

with best compliment from

J.I.H. Rajokhar Unit

[Bihar]

Website Link :
www.kantimasik.com

संपादक
शिब्ली अरसलान
abuaniqa@gmail.com

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि
एक प्रति 30/- रु॰ एक वर्ष 350/- रु॰
दो वर्ष 670/- रु॰ तीन वर्ष 950/- रु॰
चार वर्ष 1200/- रु॰ पांच वर्ष 1400/- रु॰
आजीवन रु॰ 4000/-
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न॰
9818799223

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025

चेक / ड्राफ्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

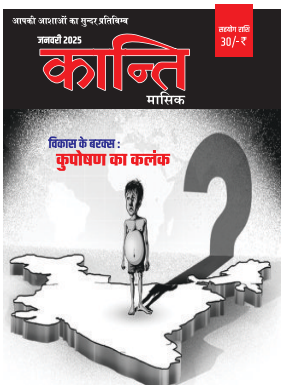
मुद्रक एवं प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं
ASILA OFFSET PRINTERS
1299, KALAN MAHAL,
NEW DELHI-110002

संपादक : शिब्ली अरसलान

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

वर्ष 34 अंक 07 जनवरी 2025

आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब



कान्ति
मासिक

इस अंक में

मूल प्रश्न 04
कुपोषण की भयावह समस्या, राजनीतिक 'गंभीरता' और हमारी भूमिका
शिब्ली अरसलान

चिंतन 07
तंत्रिका मनोविज्ञान और धार्मिक आस्थाएं
डॉ. मुहम्मद रिज़वान

सौंदर्य बोध 11
झूठ का इलाज
तबाना नूरी

मुख्य स्तंभ 15
विकास के बरक्स : कुपोषण का कलंक
सुफ़ियान अहमद

अभिमत 19
कुपोषण का विकास आख़िर कब तक ?
डॉ. विक्रांत भूरिया

समाधान 23
धरातल पर उतरे आर्थिक न्याय
संपादन प्रभाग

कविता 26
हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
विनोद कुमार शुक्ल

समसामयिक 27
न्याय के साथ या न्याय के ख़िलाफ़ ?
डॉ. प्रदीप कुमार

मंथन 29
दिखने लगे हैं बुरे नतीजे
जितेंद्र गौतम

संवाद 33
इस्लाम, आदिवासियत और हिंदुत्व
डॉ. अभय कुमार

विशेष 38
सामाजिक गणतंत्र का सपना अधूरा
संपादन प्रभाग

सेहत 41
फेफड़ों को दें राहत की सांस
संपादन प्रभाग

करियर 43
मोती से चमकाएं भविष्य
संपादन प्रभाग

कहानी 45
अपना-अपना भाग्य
जैनेंद्र कुमार

आख़िरी पन्ना 49
संपूर्ण समर्पण की सीधी राह
संपादन प्रभाग

मूल प्रश्न



शिब्ली अरसलान

कुपोषण की भयावह समस्या, राजनीतिक 'गंभीरता' और हमारी भूमिका

कुपोषण (malnutrition) आधुनिक दुनिया की एक भयावह और गंभीर समस्या है। विकासवाद और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का राग अलापने वाली इस अत्याधुनिक दुनिया में कुपोषण अत्यंत घृणित समस्या लगती है। कुपोषण एक ऐसी स्थिति है जो तब विकसित होती है जब शरीर भोजन में से विटामिन और अन्य खनिजों से वंचित हो जाता है जो स्वस्थ ऊतकों (health tissues) को बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। मोटे तौर पर ये भुखमरी से उत्पन्न स्थिति है।



विश्व बैंक ने बजा तौर पर इसकी तुलना ब्लेक डेथ नामक महामारी से की है। जिसने 18वीं सदी में यूरोप की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को निगल लिया था।

बीते कुछ वर्षों में भारत में कुपोषण को लेकर नए सिरे से बहस शुरू हुई है। भारत में कुपोषण को जानने-समझने के लिए कई रिपोर्ट्स और अध्ययन मौजूद हैं। वर्ष 2023 में जब वैश्विक भुखमरी सूचकांक (GHI) में भारत 125 देशों में से 115वें स्थान पर रहा था और पड़ोसी देश पाकिस्तान की रैंकिंग भारत से बेहतर थी तो ख़ूब शोर-शराबा हुआ। वर्ष 2024 में यद्यपि भारत की स्थिति थोड़ी बेहतर हुई है, अब भारत 127 देशों में 105वें स्थान पर है और पाकिस्तान 109वें स्थान पर। मगर भारत अब भी "serious category" से निकल नहीं पाया है। पड़ोसी देशों में पाकिस्तान को छोड़ सभी भारत से बेहतर रैंक रखते हैं। बांग्लादेश, नेपाल और श्रीलंका "moderate category" में आते हैं।

दक्षिण एशिया में भारत और पाकिस्तान कुपोषण के मामले में सबसे बुरी हालत में है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) का कहना है कि भारत में हर दिन कुपोषण के कारण मरने वाले बच्चों की संख्या एक हज़ार है। (2020 की रिपोर्ट के अनुसार) अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) द्वारा प्रकाशित एक ताज़ा अध्ययन में बताया गया है कि देश के 77 प्रतिशत नवजात समुचित पोषण नहीं पाते। भारत सरकार के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (NFHS-5) में माना गया है कि देश में हर तीन बच्चों में एक कम वज़नी या नाटा है, जबकि पांच में एक दुबला है और इसका

कारण कुपोषण या समुचित पोषण का अभाव है।

कुपोषण के मामले में सबसे बुरी स्थिति से गुज़र रहे राजस्थान और मध्य प्रदेश में किए गए सर्वेक्षणों में पाया गया कि देश के सबसे ग़रीब इलाक़ों में आज भी बच्चे भुखमरी के कारण अपनी जान गंवा रहे हैं। कई रिपोर्टों में ये कहा गया है कि अगर सरकारें इस ओर थोड़ा ध्यान दें तो इन मौतों को रोका जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र ने भारत में कुपोषण की स्थिति को "चिंताजनक" बताया है। भारत में फाइट हंगर फाउंडेशन और एसीएफ इंडिया मिलकर "जनरेशनल न्यूट्रिशन प्रोग्राम" चलाती है। एसीएफ का कहना है कि कुपोषण को "चिकित्सीय आपात स्थिति" के रूप में देखने की ज़रूरत है। साथ ही उन्होंने इस दिशा में बेहतर नीतियों के बनाए जाने और इसके लिए बजट दिए जाने की भी पैरवी की। एसीएफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में कुपोषण जितनी बड़ी समस्या है, वैसा पूरे दक्षिण एशिया में और कहीं देखने को नहीं मिलता है।

वास्तव में कुपोषण बहुत सारे सामाजिक-राजनैतिक कारणों का परिणाम है। जहां भूख और ग़रीबी, राजनैतिक एजेंडा की प्राथमिकता नहीं होती वहां कुपोषण सतह पर उभरता है। भारत इसका सबसे सटीक उदाहरण है जहां अधिक ग़रीब और कम विकसित पड़ोसियों जैसे बांग्लादेश और नेपाल से भी अधिक कुपोषण है। भारत की राजनीति में "ग़रीबी हटाओ" और "ग़रीबी मुक्त भारत का संकल्प" महज़ चुनावी नारे और जुमले हैं। ग़रीबी और भूख से मुक्ति के लिए ठोस दीर्घकालिक योजना और मज़बूत प्रतिबद्धता व सतत् प्रयास नज़र नहीं आता। यदि सरकारें भूख से मुक्ति और भरण-पोषण का पक्का इंतिज़ाम नहीं करती तो फिर ये किस मर्ज़ की दवा हैं।

सर्वसमेटू पूंजीवाद और बाज़ारवाद से उपकृत भारतीय चुनावी राजनीति में इतनी ग़ैरत नहीं है कि कुपोषण के विरुद्ध साहसपूर्ण क़दम उठा सके। ये सर्वविदित है कि भारत खाद्य उत्पादन में दुनिया के अग्रणी देशों में है। भारत अपनी समस्त जनसंख्या के भरण-पोषण की ताक़त रखता है, इसका मतलब ये है कि यहां समस्या केवल क्रय शक्ति की है। कैसी विडंबना है कि हमारी राजनीति और शासन में इतनी संवेदना और साहस नहीं है कि कुपोषण मुक्त भारत के लिए कोई ऐसी नीति बना सके कि जहां खाद्य पदार्थों की ख़रीद सभों के लिए आसान हो। कुपोषण की समस्या को कांग्रेस बनाम भाजपा की बाइनरी से अलग जाकर देखना होगा। सारी सरकारें और समस्त राजनीति दोषी है।

कुपोषण का एक सामाजिक-नैतिक संदर्भ भी है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में बच्चों को खाना न मिलने के साथ-साथ, देश में खाने की बर्बादी का ब्योरा भी दिया गया है। इसका एक पहलू तो राजनैतिक और आर्थिक है कि भारत में दोष युक्त नीतियों के कारण आर्थिक असमानता अपने चरम पर है। वहीं इससे सामाजिक संवेदनहीनता का अंदाज़ा भी होता है कि समाज के खाए-पिए-अघाए अमीर लोग खाना बर्बाद तो कर रहे हैं मगर कोई सामाजिक व्यवस्था ऐसी नहीं बना रहे जहां भूख से मर रहे लोगों के लिए 'सामुदायिक किचन' चला सकें, अपने आस-पास के कुपोषित बच्चों के लिए विटामिन और खनिज पदार्थ युक्त क्वालिटी डाईट का इंतिज़ाम कर सकें।

> **"कुपोषण को "चिकित्सीय आपात स्थिति" के रूप में देखने की ज़रूरत है। साथ ही उन्होंने इस दिशा में बेहतर नीतियों के बनाए जाने और इसके लिए बजट दिए जाने की भी पैरवी की। एसीएफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में कुपोषण जितनी बड़ी समस्या है, वैसा पूरे दक्षिण एशिया में और कहीं देखने को नहीं मिलता है।"**

भारत में कुपोषण पर रिपोर्टें और स्टडीज़ भारतीय समाज में गहराई तक जड़ जमाए सामाजिक अन्याय की ओर भी इशारा करते हैं। एसीएफ की एक रिपोर्ट में कहा गया है, "भारत में अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति और ग्रामीण समुदाय पर कुपोषण का अत्यधिक बोझ है।"

अतः कुपोषण मुक्त भारत का सपना पूरा करने के लिए जातिवाद के दंश और विभाजनकारी मानसिकता से मुक्त होना बहुत ज़रूरी है। सत्ता और प्रशासन में बैठे मानव संवेदना से ख़ाली व्यक्ति यदि कुपोषित वंचित समाज को जातीय ऐनक से देखे तो कभी कोई नीति और योजना ज़मीन पर कार्यान्वित नहीं हो सकती।

अंत में,

कुपोषण जैसी पुरानी और विकराल समस्या को महज़ राजनीतिक फ़ैसले और सरकारी नीतियों से नहीं, बल्कि मज़बूत नज़रिया, मानव संवेदनशीलता, राजनीतिक साहस, सामाजिक न्याय और नैतिक बल से हल क्या जा सकता है।





Seahath Canning Company

Plot No. 8, Margoa Industrial Estate
St. Jose de Areal. Post Curtorium
Margoa, Goa 403709, INDIA
Tel.: +91-832-2860412 / 6481562
Email: info@seahath.com | www.seahath.com

तंत्रिका मनोविज्ञान और धार्मिक आस्थाएं



तंत्रिका मनोविज्ञान (neuropsychology) तंत्रिका विज्ञान (neuroscience) की अपेक्षाकृत आधुनिक शाखा है। हालांकि दिमाग़ और इससे जुड़ी बीमारियों का उल्लेख प्राचीन मिस्र और अरस्तू के संवादों में भी मिलता है, लेकिन अस्सी के दशक से न्यूरोसाइकोलॉजी एक अलग वैज्ञानिक शाखा के रूप में विकसित होने लगी। यह विज्ञान दिमाग़ (brain) और मन (mind) के बीच परस्पर क्रिया के अध्ययन से खोज करती है। मूलतः मानसिक रोगियों या दिमाग़ पर चोट लगने से होने वाली बीमारियों पर शोध करना इसका मुख्य उद्देश्य था।

धीरे-धीरे विज्ञान को ही ज्ञान का एकमात्र माध्यम मानने वाले "विज्ञानवाद" (scientism) के प्रभाव में और कुछ अनावश्यक जिज्ञासा के आधार पर इस मैदान के शोधकर्ताओं ने इसके अध्ययन के दायरे में चेतना, धर्म, धार्मिक अनुभव और पराभौतिक (metaphysical) घटनाओं को भी शामिल कर लिया और एक नई शाखा का जन्म हुआ जिसे, धार्मिक तंत्रिका मनोविज्ञान (neuropsychology of religion) कहा जाता है।

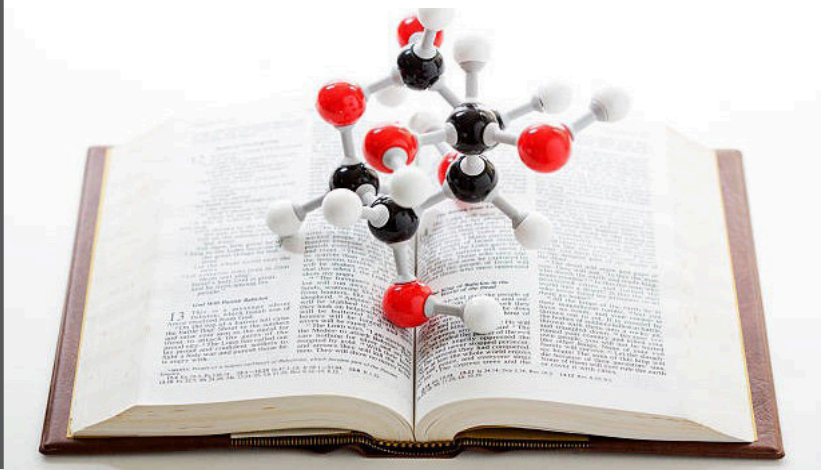
अब स्थिति यह है कि पिछले तीस वर्षों में धार्मिक मान्यताओं, अनुभवों और धार्मिक चेतना की व्याख्या तंत्रिका मनोविज्ञान के तहत की जाती है। न्यूरोसाइकोलॉजी में न्यूरॉन (Neuron) में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों पर शोध किया जाता है। अर्थात् किसी



धार्मिक अनुष्ठान को करते समय तंत्रिका में क्या परिवर्तन होता है। कौन से रासायनिक पदार्थ निकलते हैं और किसी धार्मिक प्रतीक की तस्वीरों जैसे क्रॉस, हिलाल और ओम आदि की तस्वीरों से दिमाग़ के न्यूरोलॉजिकल लैंड स्केप में क्या परिवर्तन होते हैं। इसका अध्ययन करके धार्मिक आस्थाओं, प्रतीकों और इस तरह के दूसरे पहलुओं की व्याख्या की जाती है। न्यूरोसाइकोलॉजी पर हज़ारों लेख लिखे गए हैं। सैकड़ों किताबें हैं, सैकड़ों शोधकर्ता हैं जो सामाजिक डार्विनवाद (social Darwinism) के ढांचे का उपयोग करके धर्म के अस्तित्व, विकास और रिवाजों (rituals) का विश्लेषण करते हैं, और यह बताने की कोशिश करते हैं कि धर्म के सभी विचारों और मान्यताओं की सबसे सरल व्याख्या संभव है और धर्म कोई ईश्वरीय हैसियत नहीं रखता। बल्कि धर्म एक मानवीय प्रयास है, मनुष्यों ने ही इसे बनाया है और मनुष्य ही इसे बरतते भी हैं। आरंभिक मनुष्य रूपी प्राणियों के यहां भी रिवाज मौजूद थे। और मानव समाज में पहले-पहल सरल धार्मिक मान्यताएं और प्रथाएं देखने को मिलती हैं, जैसे पशु पूजा आदि।

न्यूरोसाइकोलॉजी में दिमाग़, मन, चेतना और संज्ञानात्मक क्षमता (cognitive potential) का स्तर, और इस प्रकार की बहुत सारी अवधारणाएं और बहसें हैं। धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी ने धर्म, धार्मिक विचारों, मान्यताओं, अनुभवों और परंपराओं को केवल कुछ रासायनिक अंतर्क्रिया और कुछ तंत्रिका-तंत्रों (neuronal networks)

धीरे-धीरे विज्ञान को ही ज्ञान का एकमात्र माध्यम मानने वाले "विज्ञानवाद" (scientism) के प्रभाव में और कुछ अनावश्यक जिज्ञासा के आधार पर इस मैदान के शोधकर्ताओं ने इसके अध्ययन के दायरे में चेतना, धर्म, धार्मिक अनुभव और पराभौतिक (metaphysical) घटनाओं को भी शामिल कर लिया और एक नई शाखा का जन्म हुआ जिसे, धार्मिक तंत्रिका मनोविज्ञान (neuropsychology of religion) कहा जाता है।



तक सीमित करने की कोशिश की है। धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी के तहत दिखाने की कोशिश की जाती है कि– सभी धर्म मनुष्य के बनाए हुए हैं, और जैसे-जैसे मनुष्यों में चेतना का विकास होता गया धर्म आकार पाते गए और धीरे-धीरे बहुदेववाद (polytheism) से एकेश्वरवाद (monotheism) की तरफ़ विकसित हुए।

सभी धार्मिक अनुभव जैसे अंतर्ज्ञान, पूरे ब्रह्मांड के साथ समावेश का आंतरिक अनुभव या महान अनुभवों (great experiences) और चेतना की परिवर्तित अवस्था (altered conscious state) इन सभी का भौतिक और न्यूरोलॉजिकल औचित्य संभव है। यह कोई अलौकिक आयाम अपने अंदर नहीं रखते। वह्य (प्रकाशना) या अचानक ज्ञान प्राप्त होना (sudden enlightenment) दिमाग़ की एक विशेष अवस्था है, इसमें किसी अलौकिक सत्ता का हस्तक्षेप नहीं है।

धर्म का न्यूरोलॉजिकल और मनोवैज्ञानिक औचित्य इस बात की गारंटी देता है कि विकासवादी ढांचे में धर्म के सभी आख्यानों को औचित्य प्रदान किया जा सकता है।

न्यूरोसाइकोलॉजी हो या उसकी शाखाएं, उसके सभी आख्यानों में आणविक जीव विज्ञान और अनुवांशिक नियतिवाद (genetic determinism) की अवधारणाओं ने उसे और हवा दी है। अनुवांशिक नियतिवाद में यह बताने की कोशिश की जाती है कि धार्मिक आस्थाओं और धार्मिकता के लिए एक जीन या जीन के कई संयोजन (combination) ज़िम्मेदार होते हैं। यहीं से धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी में स्थानीयकरणवादी दृष्टिकोण (localisationist view) प्रभावी हुआ, यानी यह दृष्टिकोण कि दिमाग़ के सिर्फ़ ख़ास हिस्से ही विभिन्न आस्थाओं और सामाजिक व्यवहारों के लिए ज़िम्मेदार होते हैं और मनुष्य के भीतर प्राकृतिक रूप से कोई चीज़ डाली नहीं गई है।

इसी प्रकार यह कहा गया है कि दिमाग़ का एक विशेष हिस्सा वह है जो धार्मिकता (religiosity) के लिए ज़िम्मेदार होता है। इस हिस्से में तंत्रिका गतिविधि की उपस्थिति होने या न होने के आधार पर कोई व्यक्ति धार्मिक या ग़ैर-धार्मिक हो सकता है। संक्षेप में, यह कि अपनी मान्यताओं के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति बस मजबूर होता है और कोई स्वतंत्र इच्छाशक्ति (freewill) नहीं रखता। अतः धार्मिक और ग़ैर-धार्मिक की बहस ही बेकार है। यह भी कहा जाता है कि हमारी सभी क्रियाओं के ज़िम्मेदार सिर्फ़ और सिर्फ़ जीन होते हैं। धार्मिकता के ज़िम्मेदार भी जीन होते हैं।

हालांकि बाद के शोधों ने यह साबित कर दिया कि ज़रूरी नहीं कि यह जीन केवल धार्मिक विश्वास वाले लोगों में ही सक्रिय हो, बल्कि इसे सामान्य तौर पर किसी भी प्रकार के आशावाद (optimism) में सक्रिय पाया गया। और अन्य शोधों ने यह भी बताया है कि धार्मिकता जैसे उच्च-स्तरीय व्यवहार को केवल एक जीन या सिर्फ़ जीन तक सीमित नहीं किया जा सकता है। ऐसा

इसलिए भी है कि आधुनिक शोधों में अनुवांशिक प्रयोगों को सापेक्षिक क़रार दिया गया है तथा दिमाग़ के विशेष हिस्सों में एक से अधिक क्रियाओं के लिए समान न्यूरॉन्स या तंत्रिका-तंत्र (neural network) ज़िम्मेदार होते हैं।

इसलिए निश्चित रूप से कुछ भी कहना मुश्किल होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, दिमाग़ के एक हिस्से amygdalla के संबंध में यह साबित है कि यह डर की भावना के लिए ज़िम्मेदार है, लेकिन वही हिस्सा संवेदना बोध के लिए भी ज़िम्मेदार है। इस संबंध में डॉ. जेम्स जोन्स का कहना है कि–

"Cognition cannot be reduced to either a single region of brain, nor a single network."

मानसिक शक्ति को दिमाग़ के किसी एक भाग तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसलिए, यह बात पूरे भरोसे के साथ कही जा सकती है कि धर्म और धार्मिकता के सिलसिले में हो रहे शोध अभी बिल्कुल प्रारंभिक अवस्था में हैं और विशुद्ध विज्ञान यह साबित करने में विफल है कि धार्मिकता के लिए कुछ विशेष जीन या तंत्रिका-तंत्र ज़िम्मेदार हैं।

न्यूरोसाइंस के आधार पर निर्मित विभिन्न मॉडलों में कई ख़ामियां हैं उदाहरण के लिए–तंत्रिका नेटवर्क संभवतः सीमित नहीं किए जा सकते। तंत्रिका नेटवर्क की मैपिंग आमतौर पर एफ़एमआरआई (functional magnetic resonance imaging) या अन्य तकनीकों की मदद से की जाती है, जिनकी अपनी सीमाएं होती हैं। तंत्रिका नेटवर्क के सभी मॉडल आमतौर पर कंप्यूटर एल्गोरिदम द्वारा बनाए जाते हैं, इन एल्गोरिदमों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (artificial intelligence) की भी अपनी सीमाएं हैं। इन आधे-अधूरे शोधों ने विज्ञानवाद के प्रभाव में वो आख्यान (narrative) निर्मित किए जिनके वैज्ञानिक आधार बहुत कमज़ोर हैं।



धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी का एक दूसरा उज्ज्वल पक्ष भी है। पिछले तीस वर्षों में धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभावों से संबंधित सैकड़ों सकारात्मक शोध-पत्र लिखे गए हैं। इस शोध-पत्र के अलावा और भी ऐसे शोध-पत्र हैं, जिन्होंने धर्म की सकारात्मक भूमिका को उजागर किया है, उनकी तादाद सैकड़ों में है।

जिनसे यह बात साबित हो गई कि मानसिक स्वास्थ्य और धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता के बीच सीधा संबंध है और यह संबंध सकारात्मक है। धर्म न केवल आशा और उद्देश्य देते हैं, बल्कि वह मनुष्य को बुरी परिस्थितियों का सामना करने में मदद भी करते हैं। और मनुष्य में सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं से सकारात्मक बदलाव पैदा करते हैं।

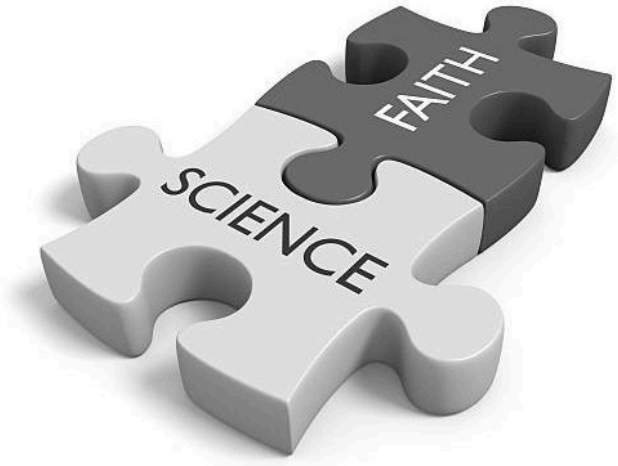
यह बात भी सामने आई कि धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी अपने मूल रूप में संतुलित रखी जा सकती है। इसके अलावा यह बात भी ध्यान में रहनी चाहिए कि यह विज्ञान सिर्फ़ "कैसे" की व्याख्या है, "क्यों" की नहीं। क्यों का उत्तर जिस विकासवादी अवधारणा से दिया जाता है वह विकासवादी अवधारणा बहरहाल, कई

स्तरों पर त्रुटिपूर्ण है।

यह बात ग़लत है कि परंपराओं के गर्भ से धर्म जन्म लेते हैं, यानी परंपराओं से विकसित होकर धर्म बनते हैं। क्योंकि इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। जो वर्णन किया जाता है उन पर बहस की संभावनाएं मौजूद हैं। धर्म विकसित होते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मनुष्यों ने इन धर्मों को बनाया है। कुछ रीति-रिवाजों और पंथों के संबंध में यह दृष्टिकोण सही हो सकता है, लेकिन संरचित धर्मों जैसे इस्लाम के संबंध में यह सही नहीं है।

धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी और न्यूरोथियोलॉजी (neurotheology) तंत्रिका विज्ञान (neuroscience) की आधुनिक शाखाएं हैं। उनमें होने वाले शोधों ने जहां धर्म और आध्यात्मिकता के लाभदायक होने के पक्ष में बहुत सारे प्रमाण उपलब्ध कराये हैं वहीं उनमें हो रहे कुछ शोधों ने विज्ञानवाद के प्रभाव में धार्मिक मान्यताओं, जैसे मृत्यु के बाद का जीवन, आत्मा, धर्म या धर्म का पराभौतिक सत्ता होना और दंड की अवधारणा को केवल भौतिक, रासायनिक और तंत्रिका संबंधी (neurological) रंग देने का प्रयास किया है।

इस विज्ञान में दो मूलभूत प्रश्न हैं, जिनका उत्तर आना अभी बाक़ी है। पहला, धार्मिक अनुभव के संज्ञानात्मक स्रोत (cognitive source) की खोज। इस पर बड़े हद तक डेटा आ रहा है और इस स्रोत को मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों से जोड़ा जाने लगा है। तंत्रिका-तंत्र में विशेष भौतिक-रासायनिक परिवर्तनों को इससे जोड़ा जाता है, लेकिन उच्च धार्मिक अनुभवों के संज्ञानात्मक स्रोत पर निर्णायक शोध आना बाक़ी है, लेकिन निश्चित रूप से अब भी कोई बात कहना संभव नहीं है। दूसरा, यूरोलॉजिकल परीक्षण करने से पहले जांच के अधीन व्यक्ति की मनोदशा, धारणाएं और कंडीशनिंग का पता लगाना असंभव है। इसलिए इन शोधों में क्लासिकी पूर्वाग्रह प्रवेश कर जाता है।



यह बात भी सामने आई कि धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी अपने मूल रूप में संतुलित रखी जा सकती है। इसके अलावा यह बात भी ध्यान में रहनी चाहिए कि यह विज्ञान सिर्फ़ "कैसे" की व्याख्या है, "क्यों" की नहीं। क्यों का उत्तर जिस विकासवादी अवधारणा से दिया जाता है वह विकासवादी अवधारणा बहरहाल, कई स्तरों पर त्रुटिपूर्ण है।

एक और महत्वपूर्ण पहलू, अनुभूति और चेतना के उच्च स्तरों में तंत्रिका-तंत्रों की अनिश्चित भूमिका से संबंधित है, जो धार्मिक न्यूरोसाइकोलॉजी में होने वाले शोधों से उभर कर सामने आ रहा है। यह पारंपरिक पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा (epistemology) के लिए असाधारण चुनौती खड़ा कर रहा है।

निष्पक्षता से यदि इस पूरे विज्ञान में होने वाले शोधों की समीक्षा की जाए तो यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि शोधकर्ताओं का एक बड़ा समूह विज्ञानवाद के प्रभाव में अपने विशेष आख्यानों को आगे बढ़ाने और लोगों में इसे प्रभावी बनाने के लिए इस प्रकार के विज्ञान का उपयोग कर रहा है। इसके विपरीत, धार्मिक लोग केवल व्यवहार के मनोविज्ञान के शिकार हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के वैज्ञानिक क्षेत्र में मध्यम प्रकृति के शोधों को बढ़ावा दिया जाए। ■■



झूठ का इलाज

आमतौर पर झूठ का जन्म किसी आध्यात्मिक या नैतिक कमज़ोरी के कारण होता है, यानी कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति दुःख और असहायता के डर से, दूसरे लोगों द्वारा उसे अकेला छोड़ दिये जाने के कारण या अपनी स्थिति और पद की रक्षा के लिए झूठ बोलता है। कभी-कभी धन, पद और अन्य इच्छाओं की गंभीर समस्या उसे झूठ बोलने पर मजबूर कर देती है। वह इन जगहों पर झूठ का सहारा लेकर अपनी इच्छाएं पूरी करना चाहता है।

ऐसा भी होता है कि किसी व्यक्ति का किसी व्यक्ति या समूह के प्रति प्रेम या नफ़रत उसे सामने वाले व्यक्ति या समूह के पक्ष या विपक्ष में तथ्यों के विपरीत कुछ कहने के लिए मजबूर कर देती है। यदि सामने वाला व्यक्ति या समूह उससे प्रेम करता है तो यह झूठा व्यक्ति उसे फ़ायदा पहुंचाना चाहता है और यदि वह शत्रु है तो स्पष्ट रूप से वह उसे नुक़सान पहुंचाना चाहता है।

सौंदर्य बोध



तबाना नूरी

व्यक्ति कभी-कभी वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यापारिक आदि किसी भी दृष्टिकोण से स्वयं को बड़ा बनाकर दूसरों के सामने प्रस्तुत करने के लिए झूठ बोलता है। सच तो यह है कि सारी बुराइयां जो झूठ के कारण पैदा होती हैं, व्यक्ति की आध्यात्मिक-नैतिक कमज़ोरी, व्यक्तित्व की कमज़ोरी और विश्वास की कमज़ोरी के कारण पैदा होती हैं। जो लोग ख़ुद पर विश्वास नहीं करते या आध्यात्मिक और नैतिक रूप से कमज़ोर होते हैं वे अपने लक्ष्य को हासिल करने और नुक़सान से बचने के लिए हर तरह के झूठ और बहानों को अपना पहला और आख़िरी हथियार मानते हैं, जबकि जिन लोगों में आत्मविश्वास होता है वे स्वयं अपने बलबूते आगे बढ़ते हैं और किसी ग़लत काम या तरीक़े से फ़ायदा नहीं उठाते।

इसी प्रकार जो लोग ईश्वर की महान शक्ति में विश्वास रखते हैं, वे भी अपने इरादों में सभी प्रकार की सफलता, विजय और उन्नति चाहते हैं और ईश्वर

की शक्ति को सभी प्रकार की शक्तियों से उच्च और महान मानते हैं। इसलिए ऐसे लोग अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए या होने वाले नुक़सान से ख़ुद को बचाने के लिए किसी भी परिस्थिति में झूठ या ग़लत बयानी का सहारा नहीं लेते हैं।

हां! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ लोग झूठ के नुक़सान और सच की महत्ता से अनजान होने या माहौल की ख़राबी से इस बहुत ही ख़तरनाक बुराई का शिकार हो जाते हैं। एक दूसरी अहम वजह यह भी होती है कि इंसान कॉम्पलेक्स की वजह से भी झूठ को अपनी आदत बना लेता है। जो लोग कॉम्पलेक्स का शिकार होते हैं उनकी कोशिश होती है कि किसी भी झूठ या ग़लत बयानी के ज़रिए कॉम्पलेक्स को ख़त्म कर सकें।

इस बुराई का मूल कारण बताने के बाद इस रोग का इलाज आसान लगता है। इस नैतिक बीमारी से बचने के लिए निम्नलिखित बातों का पालन करना ज़रूरी है–

1. सबसे पहले यह ज़रूरी है कि इस ख़तरनाक बीमारी से प्रभावित लोगों को इसके ख़तरनाक आध्यात्मिक-नैतिक सांसारिक और व्यक्तिगत व सामाजिक नुक़सान और प्रभावों के बारे में बताया जाए। इसके बाद यह साबित किया जाना चाहिए कि झूठ बोलने वाले के मानसिक फ़ायदों की तुलना उसके झूठ से होने वाली व्यक्तिगत सामाजिक और नैतिक हानियों और गुमराही से नहीं की जा सकती।

ऐसे में इस बीमारी में फंसे लोगों को यह भी याद दिलाना चाहिए कि अगर कुछ जगहों पर इसके कुछ फ़ायदे हैं तो ये फ़ायदे अस्थायी और क्षणिक हैं, क्योंकि सभी स्थितियों में मानव समाज की सबसे बड़ी ताक़त एक-दूसरे पर भरोसा



जो लोग ईश्वर की महान शक्ति में विश्वास रखते हैं, वे भी अपने इरादों में सभी प्रकार की सफलता, विजय और उन्नति चाहते हैं और ईश्वर की शक्ति को सभी प्रकार की शक्तियों से उच्च और महान मानते हैं। इसलिए ऐसे लोग अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए या होने वाले नुक़सान से ख़ुद को बचाने के लिए किसी भी परिस्थिति में झूठ या ग़लत बयानी का सहारा नहीं लेते हैं।

ही है। यदि समाज में झूठ का चलन आम हो गया तो समाज में पाया जाने वाला आपसी विश्वास भी ख़त्म हो जाएगा।

कुछ लोग सोच सकते हैं कि अगर ऐसा झूठ बोला जाए जो कभी सामने न आ सके तो इसमें क्या हर्ज है। स्पष्ट है कि ऐसे में समाज का आपसी विश्वास भी बना रहेगा। सच तो यह है कि यह विचार एक बड़ी ग़लती है, क्योंकि अनुभव से साबित हुआ है कि झूठ अक्सर छिप नहीं पाता। इसका कारण यह है कि जब भी समाज में कोई घटना घटित होती है तो वह घटना कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में अन्य लोगों से जुड़ी होती है और अंततः सच सामने आ ही जाता है।

मिसाल के तौर पर हज़रत अली (रज़ि.) के ज़माने में एक व्यक्ति बहुत सारा माल लेकर व्यापार करने गया। उसके साथ उसके कुछ दोस्त भी थे, वापस लौटने पर उसके दोस्तों ने उसकी मौत की ख़बर दी। ये लोग ही अस्ल में उसके हत्यारे थे। हज़रत अली (रज़ि.) ने उस व्यक्ति की बीमारी, मृत्यु, कफ़न और दफ़न आदि के बारे में प्रश्न पूछना शुरू कर दिया। शीघ्र ही वे लोग चुप हो

गये और अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इसका कारण यह है कि उन्होंने आपस में निश्चय किया था कि लौटकर वे कहेंगे कि वह बीमार पड़ गया और मर गया, लेकिन कहां, कैसे, किस समय, किसने ग़ुस्ल दिया, किसने कफ़न दिया, कहां दफ़न किया गया आदि प्रश्नों का उन लोगों के पास कोई उत्तर नहीं था। सच तो यह है कि इतने छोटे-छोटे प्रश्नों पर उनका कोई ध्यान नहीं था। इसलिए संभव है कि चतुर से चतुर व्यक्ति का झूठ भी थोड़ी जांच-पड़ताल और सवालों के बाद खुल जाएगा और उसे झूठ स्वीकार करना पड़ेगा।

ख़ासकर, इंसान अपने झूठ का जो ताना-बाना बुनता है, वह उसकी याददाश्त में नहीं रह पाता, क्योंकि उनमें कोई सच्चाई नहीं होती। इसलिए यदि किसी झूठे व्यक्ति से कुछ समय बाद प्रश्न पूछा जाए तो उसके उत्तर में कई ग़लत बातें उत्पन्न हो जाती हैं और वह परेशान हो जाता है, इसीलिए कहा जाता है कि झूठे व्यक्ति का दिल कमज़ोर होता है।

2. दूसरा महत्वपूर्ण उपचार यह है कि रोगी को यह एहसास कराया जाए कि वह एक व्यक्तित्व का मालिक है, उसका भी एक व्यक्तित्व है, उसकी एक गरिमा है। क्योंकि कहा गया है कि झूठ के जन्म का एक अहम कारण कॉम्प्लेक्स होना है और अस्ल में व्यक्ति झूठ का सहारा लेकर इस भावना से छुटकारा पाना चाहता है। झूठे लोगों जैसे ख़तरनाक मरीज़ों को अगर यह एहसास हो जाए कि उनमें भी कई हुनर हैं और वे उन हुनर के ज़रिए अपना खोया हुआ व्यक्तित्व, चरित्र और व्यवहार वापस ला सकते हैं तो वे ख़ुद ही झूठ की बैसाखी के सहारे आगे बढ़ने की अपनी आदत ख़त्म कर देंगे। इसके अलावा ऐसे लोगों को यह भी समझाना और विश्वास

सदैव सच बोलने की शिक्षा घर में बच्चों को बचपन से ही दी जानी चाहिए। निस्संदेह, अगर माता-पिता सच बोलने के आदी हैं, यहां तक कि अपने बच्चों से किए गए छोटे-छोटे वादों में भी, तो उनके बच्चे कभी भी झूठ बोलने के आदी नहीं होंगे।



दिलाना चाहिए कि ऐसे सच्चे व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व अन्य सभी मूल्यों से बढ़कर है, जिसने अपनी सच्चाई से लोगों का विश्वास हासिल किया है।

सच्चे मनुष्य में पाए जाने वाले "सामाजिक व्यक्तित्व" जैसे धन की तुलना किसी अन्य धन से नहीं की जा सकती है और वह अपने इस धन के माध्यम से अपने कार्यों को भी अच्छी तरह से पूरा कर सकता है। ऐसा सच्चा इंसान न सिर्फ़ लोगों की नज़रों में जगह बनाता है, बल्कि ईश्वर के दरबार में भी उच्च स्थान पाता है।

3. इस रोग से पीड़ित लोगों के विश्वास को मज़बूत करने और उन्हें यह समझाने का प्रयास करना चाहिए कि ईश्वर की शक्ति अन्य सभी शक्तियों से अधिक महान है। ईश्वर की शक्ति इतनी विशाल है कि वह सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सकती है। कमज़ोर विश्वास वाले लोग अपनी समस्याओं का समाधान खोजने के लिए झूठ का सहारा लेते हैं और ईमानदार लोग कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करने के लिए ईश्वर पर भरोसा करते हैं।

4. झूठ के कारणों जैसे लालच, डर, स्वार्थ और बहुत ज़्यादा प्यार और नफ़रत आदि को दूर करना चाहिए, ताकि इंसान के अंदर यह ख़तरनाक बुराई पैदा न हो सके।

5. ऐसे लोगों के साथ उठने-बैठने से बचना चाहिए। जिन लोगों में यह बुराई पाई जाती है उन्हें अवश्य ही दूर कर देना चाहिए।

सदैव सच बोलने की शिक्षा घर में बच्चों को बचपन से ही दी जानी चाहिए। निस्संदेह, अगर माता-पिता सच बोलने के आदी हैं, यहां तक कि अपने बच्चों से किए गए छोटे-छोटे वादों में भी, तो उनके बच्चे कभी भी झूठ बोलने के आदी नहीं होंगे। ■■

ऐ ईमान लाने वालो! तुमपर रोज़े अनिवार्य किए गए, जिस प्रकार तुमसे पहले के लोगों पर अनिवार्य किए गए थे, ताकि तुम डर रखने वाले बन जाओ।

(क़ुरआन, 2:183)



with best compliment from

J.I.H., Pakur
(Jharkhand)

विकास के बरक्स : कुपोषण का कलंक



अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) द्वारा प्रकाशित एक ताज़ा अध्ययन में बताया गया कि देश के 77 प्रतिशत नवजात समुचित पोषण नहीं पाते। भारत सरकार के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (NFHS-5) में माना गया कि देश में हर तीन बच्चों में एक कम वज़नी या नाटा है, जबकि पांच में एक दुबला है और इसका कारण कुपोषण या समुचित पोषण का अभाव है।

डब्ल्यूएचओ के अनुसार समुचित पोषण के अभाव में बच्चों की शारीरिक क्षमता पर तो असर पड़ता ही है, मानसिक पैरामीटर्स जैसे स्थितियों को समझने, ज्ञान हासिल करने और याददाश्त की क्षमता कम होने का भी ख़तरा रहता है। नए अध्ययन में पाया गया कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश की स्थिति अधिक दयनीय है।

मुख्य स्तम्भ



सुफ़ियान अहमद

यह सर्वविदित है कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र में भारत आत्मनिर्भर माना जाता है साथ ही यहां प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने के बावजूद यदि करोड़ों बच्चे कुपोषण के शिकार हैं तो हमारे लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा? आज हम ख़ुद को विकसित और ताक़तवर देशों के साथ होड़ में होने का दावा कर रहे हैं। आख़िर क्या वजह है कि विकास के पैमानों में वे सवाल हाशिये पर छोड़ दिए जा रहे हैं, जिनके नतीजों में एक बड़ी आबादी अपने बच्चों का पेट तक ठीक से नहीं भर पा रही है।

यह देखना होगा कि क्यों देश में इस समस्या का निदान दशकों से नहीं हो पाया है? क्या किसी भी कल्याणकारी राज्य का पहला और अंतिम कर्तव्य देश के नौनिहालों को कुपोषण से बचाना नहीं होना चाहिए? क्या कुपोषित बच्चों से अगले 50 साल में भी हम

जनसांख्यिकीय लाभांश (demographic dividend) का फ़ायदा ले सकेंगे?

कुपोषित आबादी के मामले में हमारे देश की स्थिति लगातार चिंताजनक बनी हुई है। भारत इसी बात से ख़ुश है कि ब्रिटेन को पछाड़कर वह दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है। पिछले कई सालों से लगातार हमारे देश में आंकड़ों के ज़रिए विकास की चमकती तस्वीर पेश की जाती रही है, लेकिन आम लोगों के जीवन-स्तर में कोई सुधार आने के बजाय उसमें लगातार गिरावट ही दर्ज की जा रही है।

पोषण जीवन के लिए न्यूनतम कसौटी है, यदि इसके लिए भी लोगों को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा हो तो यह एक गंभीर सवाल है और यह सवाल पिछले कई वर्षों से ज्यों का त्यों बना हुआ है। तथ्य यह भी है कि इस गंभीर समस्या को दूर करने के लिए अभी कुछ भी ठोस नहीं किया गया है।

बीते सात दशकों से इस समस्या पर क़ाबू पाने की बातें की जा रही हैं, लेकिन विकास के तमाम दावों के बावजूद हम अभी भी भुखमरी और कुपोषण जैसी बुनियादी समस्याओं की चपेट से बाहर नहीं निकल सके हैं। एक ओर हम अपने देश की मज़बूत आर्थिक स्थिति को लेकर ढिंढोरे पीट रहे हैं और दूसरी ओर देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो दीर्घकालिक भुखमरी और कुपोषण या अल्प पोषण की समस्या से जूझ रहे हैं।

सवाल उठता है कि आज भी हमारे देश की ऐसी हालत क्यों है कि दुनिया की कुपोषित आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा हमारे देश में रहता है। सवाल यह भी है कि आज़ादी के पचहत्तर वर्षों के बाद भी भारत से भुखमरी और कुपोषण जैसी समस्या को समाप्त क्यों नहीं किया जा सका?

नव-पूंजीवाद और बाज़ार का ढ़ांचा इस समस्या की सबसे बड़ी वजह है। यह एक गंभीर समस्या है और इस समस्या पर हमारी ख़ामोशी अच्छी नहीं है। हमारे देश में भुखमरी और कुपोषण की समस्या खाद्यान्नों की कमी के कारण नहीं है, बल्कि आहार ख़रीदने की क्रयशक्ति कम होने के कारण है। तमाम अध्ययन यह बताने के लिए काफ़ी हैं भारत अपनी पूरी जनसंख्या को अनाज उपलब्ध कराने में सक्षम है।

क्रयशक्ति कम होने के कारण लोग पौष्टिक आहार ख़रीदने में असमर्थ रहते हैं, परिणामस्वरूप कुपोषण जैसी समस्याएं बढ़ने लगती हैं और लोगों की उत्पादन क्षमता कम होने लगती है। अंततः इसके शिकार लोग ग़रीबी के दुष्चक्र में फंसने लगते हैं।

हालांकि इस समस्या पर क़ाबू पाने के लिए हमारी केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, लेकिन ये योजनाएं मात्र काग़ज़ी बनकर रह गई हैं। ज़मीनी स्तर पर इसके ख़ास परिणाम नज़र नहीं आ रहे हैं। इन पर करोड़ों रुपये ख़र्च भी किए जा रहे हैं, मगर इनका पूरा लाभ ग़रीबों तक नहीं पहुंच पाता है।

भूख से बचाव यानी खाद्य सुरक्षा की अवधारणा एक बुनियादी अधिकार है, जिसके तहत सभी को ज़रूरी पोषक तत्त्वों से परिपूर्ण भोजन उनकी ज़रूरत के हिसाब, समय पर और गरिमामय तरीक़े से उपलब्ध करना किसी भी सरकार का पहला दायित्व होना चाहिए, लेकिन भारत में विकास की यह विरोधाभासी तस्वीर वाक़ई सोचने को बाध्य कर देती है।

विश्वगुरु बनने और बुलेट ट्रेन का सपना संजोते देश ने दूसरे देशों के उपग्रह अंतरिक्ष में प्रक्षेपित करने की क्षमता तो अर्जित कर ली, लेकिन वह कुपोषण के अभिशाप से मुक्त नहीं हो सका। ऐसा लगता है कि हमारे नीति नियंताओं के प्रयासों में या तो प्रतिबद्धता नहीं है या इस दिशा में किए गए प्रयासों की दिशा ही ग़लत है।

सरकार में शीर्ष पदों पर बैठे लोगों को यह सोचना होगा कि देश के विकास का लाभ समाज के निचले तबक़ों में अपने आप नहीं पहुंचता। देश के भविष्य से जुड़ी इस गंभीर समस्या से निपटना हमारी सरकारों की अहम ज़िम्मेदारी है। इसलिए सरकारों से यह उम्मीद स्वाभाविक है कि वह इस समस्या को दूर करने की दिशा में प्राथमिकता के साथ काम करें।

देश में भूख और कुपोषण की समस्या को तभी हल किया जा सकता है, जब इस लड़ाई में केंद्र और राज्य सरकारें अपनी-अपनी योजनाओं को प्रभावी और बेहतर ढंग से लागू करें। इस दिशा में खाद्य सुरक्षा क़ानून और रोज़गार गारंटी से संबंधित योजनाओं को मज़बूती से लागू किया जाना चाहिए साथ ही हमें ऐसा तंत्र भी विकसित करना होगा कि ये योजनाएं भ्रष्टाचार की भेंट न चढ़ने पाएं।



देश में भूख और कुपोषण की समस्या को तभी हल किया जा सकता है, जब इस लड़ाई में केंद्र और राज्य सरकारें अपनी-अपनी योजनाओं को प्रभावी और बेहतर ढंग से लागू करें। इस दिशा में खाद्य सुरक्षा क़ानून और रोज़गार गारंटी से संबंधित योजनाओं को मज़बूती से लागू किया जाना चाहिए साथ ही हमें ऐसा तंत्र भी विकसित करना होगा कि ये योजनाएं भ्रष्टाचार की भेंट न चढ़ने पाएं।

वास्तविकता यह है कि आज हमारे देश में पूंजीवाद के दबदबे ने सरकार को मजबूर किया है कि उसकी ज़रूरतों व बाज़ार की मांग के अनुरूप नीतियां बनें। इसलिए ऐसी आर्थिक नीतियों की ज़रूरत है जो ग़रीबों को भी ख़ुशहाली की ओर ले जाने वाली हों, यानी रोज़गार पैदा करने वाली हों। काम होगा, हाथ में पैसा आएगा, तभी लोग कुपोषण के चंगुल से निकल पाएंगे। ■■

कान्ति के वे सब्सक्राइबर

जिन्होंने अभी तक अपनी ख़रीदारी की रक़म जमा नहीं की है,

बराय मेहरबानी

इस QR Code

के ज़रिये जल्द अदायगी करें।

Name: KANTI

Pay Directly to: kanti8920589292@indianbk

नोट :

अदायगी के बाद

स्क्रीनशॉट

इस नम्बर पर

(9818799223)

ज़रूर भेजें।

कुपोषण का विकास आख़िर कब तक ?



अभिमत



डॉ. विक्रांत भूरिया

कुपोषण वह स्थिति है जिसमें शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है। कुपोषण और गरीबी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कुपोषण की समस्या उन इलाकों में व्याप्त है, जहां गरीबी चरम पर है। विकास का अर्थ यह भी है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय या जीडीपी बढ़े, तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, लोकतंत्र, सामाजिक सुरक्षा की स्थिति में भी सुधार हो।

कुपोषण और गरीबी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कुपोषण की समस्या उन इलाकों में व्याप्त है, जहां गरीबी चरम पर है। विकास का अर्थ यह भी है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय या जीडीपी बढ़े, तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, लोकतंत्र, सामाजिक सुरक्षा की स्थिति में भी सुधार हो।

कुपोषण वह स्थिति है जिसमें पोषक तत्वों और भोजन के अव्यवस्थित सेवन के कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है। चूँकि हमें स्वस्थ रहने के लिए भोजन के माध्यम से ऊर्जा और पोषक तत्व मिलते हैं, इसलिए अगर हमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और खनिज सहित पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिलते हैं, तो हम कुपोषण का शिकार हो सकते हैं। कुपोषण तब भी होता है जब किसी व्यक्ति के आहार में सही मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध नहीं होते हैं।

स्वस्थ रहने के लिए हमें भोजन से ऊर्जा और पोषक तत्व मिलते हैं, लेकिन अगर हमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और खनिज सहित पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिलते हैं, तो हम कुपोषित हो सकते हैं। लंबे समय तक संतुलित आहार (शरीर के लिए आवश्यक) न मिलने से बच्चों और

महिलाओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिससे वे आसानी से कई बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। बच्चों और महिलाओं में होने वाली अधिकांश बीमारियों की जड़ में कुपोषण है। महिलाओं में एनीमिया या घेंघा रोग या बच्चों में सूखा रोग या रतौंधी और यहां तक कि अंधापन भी कुपोषण के दुष्प्रभाव हैं।

कुपोषण बच्चों को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। यह जन्म के समय या उससे पहले ही शुरू हो जाता है और 6 महीने से 3 साल की उम्र के बच्चों में तेजी से बढ़ता है। इसका सबसे भयानक परिणाम आर्थिक नुकसान होता है। कुपोषण से मानव उत्पादकता 10-15 प्रतिशत कम हो जाती है जिससे सकल घरेलू उत्पाद में 5-10 प्रतिशत की कमी आ सकती है।

कुपोषण और बुनियादी समस्याएं

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि कुपोषण के कई कारण हैं। इन्हें तात्कालिक (अपर्याप्त आहार और बीमारी), बुनियादी (परिवार में खाद्य असुरक्षा, गरीबी, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल और स्वच्छता जैसी सुविधाओं तक पहुंच की कमी) और प्राथमिक (सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वातावरण) कारणों में विभाजित किया जा सकता है। हमारी बस्तियां दूर-दूर तक फैली हुई हैं और आंगनवाड़ियों की स्थापना उस हिसाब से नहीं की गई है, इसलिए पोषण की समस्या बनी हुई है। साथ ही, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत स्थापित स्वास्थ्य केंद्रों में डॉक्टरों और कर्मचारियों की भारी कमी है और यही कारण है कि बीमारी होने पर समुचित उपचार नहीं मिल पाता। एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण बताता है कि देश में प्राथमिक



स्वास्थ्य केंद्रों और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में बड़ी संख्या में डॉक्टरों और कर्मचारियों के पद खाली पड़े हैं।

सरकार द्वारा क्रियान्वित सभी योजनाओं में बुनियादी ढांचे और मानव संसाधनों का भारी अभाव है, जिसके कारण उनकी गुणवत्ता और दूर-दराज़ क्षेत्रों तक उनकी पहुंच प्रभावित होती है।

अध्ययनों से पता चला कि बच्चे इन्फेंटाइल ट्रेमर सिंड्रोम नामक कुपोषण से पीड़ित पाए गए। इसके कारण खून की कमी के साथ-साथ बच्चे का मानसिक विकास भी रुक जाता है। यह उन बच्चों में सबसे अधिक पाया गया, जिन्हें 6 महीने की उम्र के बाद स्तनपान के साथ पूरक आहार नहीं मिला। अन्य शोध के अनुसार बच्चों में कुपोषण का मुख्य कारण विटामिन बी-12 की कमी है।

यद्यपि गर्भ में पल रहे शिशुओं को पोषण प्रदान करने के लिए सरकार के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत सभी स्वास्थ्य केन्द्रों एवं अस्पतालों में गर्भवती माताओं को आयरन एवं फोलिक एसिड की गोलियां निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं, किन्तु विटामिन बी-12 राष्ट्रीय कार्यक्रम की सूची में शामिल नहीं है।

पर्याप्त भोजन का संवैधानिक अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और 47 भारत सरकार को अपने सभी नागरिकों के लिए पर्याप्त भोजन के साथ सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करने के लिए उचित उपाय करने के लिए बाध्य करते हैं। अनुच्छेद 47 में कहा गया है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को ऊपर उठाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए निरंतर प्रयास करे। जबकि अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। इसलिए संविधान के मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधान अप्रत्यक्ष रूप से और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित प्रावधान सीधे कुपोषण को खत्म करने की बात

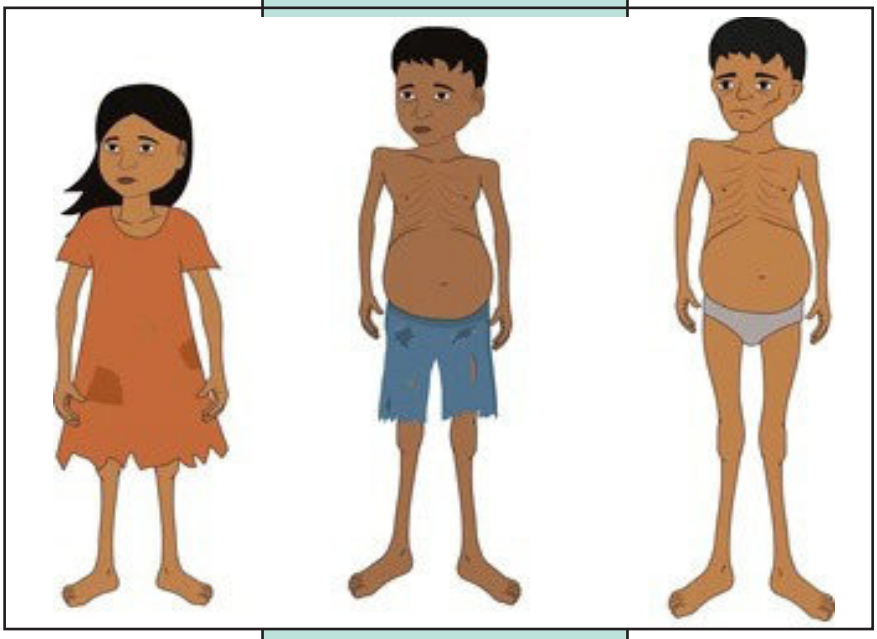
करते हैं।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व नागरिकों को रोजगार की गारंटी देते हैं। अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य सभी नागरिकों को आजीविका के समान साधन उपलब्ध कराएगा। अनुच्छेद 43 के अनुसार राज्य श्रमिकों के लिए काम, निर्वाह, मजदूरी, सभ्य जीवन स्तर और सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान करेगा और गांवों में कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा। वहीं अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा। लेकिन वास्तव में, जहां तक लोक कल्याण की नीतियों का संबंध है, राज्यों के पास कोई दूरगामी दृष्टि नहीं थी और यही कारण है कि विकास मॉडल बहुत छोटी आबादी तक सीमित हो गया, जिससे असमानता बहुत बढ़ गई है। इस देश की कुल आबादी और एक प्रतिशत लोगों के विकास में बहुत फर्क है। इस देश में अधिकांश लोग दो वक्त की रोटी कमाने के लिए संघर्ष करते हैं।

वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की वार्षिक बैठक में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसका उद्देश्य विश्व भर में गरीबी, असमानता और बेरोजगारी को समाप्त कर एक समृद्ध समाज की स्थापना करना था। इसके लिए आने वाले 15 वर्षों की समय-सीमा के साथ वर्ष 2030 तक एक बेहतर विश्व की परिकल्पना की गई और एक योजना प्रस्तुत की गई जिसमें मानव विकास को बेहतर बनाने से संबंधित 17 विषयों को शामिल किया गया। भारत में इसे 'सबका साथ, सबका विकास' नाम दिया गया है। इस एजेंडे के लागू होने के चार वर्ष बाद जब सतत विकास रिपोर्ट 2020 आई तो उसमें भारत का स्थान 166 देशों की सूची में 117वां था, जिसका साफ अर्थ है कि वह काफी निचले स्तर पर था। इस सूचकांक में भारत के पड़ोसी देशों का प्रदर्शन बेहतर रहा और भूटान 80वें, श्रीलंका 94वें, नेपाल 96वें, बांग्लादेश 109वें तथा पाकिस्तान 134वें स्थान पर रहा।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स-2020 के अनुसार, भारत में गरीबी, विविध आहार की कमी, मातृ शिक्षा का निम्न स्तर आदि को कुपोषण के लिए जिम्मेदार माना गया है। भारत में हर दूसरा बच्चा किसी न किसी तरह के कुपोषण से पीड़ित है, लेकिन लगता है कि हमारी सरकारों ने इस समस्या को कभी गंभीरता से नहीं लिया और यह असंवेदनशीलता अभी भी बदस्तूर जारी है। ■■

भारत में गरीबी, विविध आहार की कमी, मातृ शिक्षा का निम्न स्तर आदि को कुपोषण के लिए जिम्मेदार माना गया है। भारत में हर दूसरा बच्चा किसी न किसी तरह के कुपोषण से पीड़ित है, लेकिन लगता है कि हमारी सरकारों ने इस समस्या को कभी गंभीरता से नहीं लिया और यह असंवेदनशीलता अभी भी बदस्तूर जारी है।



“

जब इन्सान मर जाता है तो उसके कर्मों का सिलसिला टूट जाता है। अलबत्ता तीन चीज़ें ऐसी हैं जो इससे अलग हैं- जारी रहने वाला सदक़ा या ज्ञान जिससे फ़ायदा उठाया जाए, या नेक संतान जो उसके लिए दुआ करे।

(हदीस : मुस्लिम)

”

A Well Wisher

Al-Shifa Medicose,
Bareilly, (UP)

धरातल पर उतरे आर्थिक न्याय



आज़ादी के बाद देश ने सात दशकों से अधिक का सफ़र तय किया है। यक़ीनन हमने शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में बहुत-प्रगति की है। हम एक परमाणु शक्ति भी बन गए हैं, अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भी हमने कीर्तिमान स्थापित किए हैं, सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दुनिया में हमारे युवाओं ने अपना लोहा मनवाया है। इन सब कामयाबियों पर हमें ख़ुशी और गर्व है और होना भी चाहिए। आज़ादी के बाद हमने इस देश की विविधता को सामने रखकर एक कल्याणकारी, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ने का निर्णय किया। सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के बुनियादी मूल्यों को हमने देश का आधार बनाया।

इस पहलू से आज साढ़े सात दशक बाद ईमानदारी से जायज़ा लेने की ज़रूरत है कि इन मूल्यों के आधार पर देश व समाज के निर्माण का हमारा जो स्पप्न था वह किस हद तक पूरा हुआ? हमने जो एक कल्याणकारी राज्य बनने का फ़ैसला लिया था, उसमें हम कहां तक सफल



हुए? हमने यह भी स्वप्न देखा था कि देश की प्रगति और समृद्धि का लाभ भारत के अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सके, इसमें हम कहां तक सफल हुए?

हमने यह स्वप्न भी देखा था कि, धर्म, वर्ग, जाति, क्षेत्र, लिंग व भाषाओं की विविधता के बावजूद हर नागरिक को बराबर सम्मान मिले, उसकी गरिमा की हर हाल में रक्षा हो, उसके अधिकार सुरक्षित रहें और हरेक व्यक्ति को विकास के समान अवसर प्राप्त हों। इस पहलू से हमने कितनी सफलता प्राप्त की और आज की वास्तविक स्थितियां क्या हैं?

यक़ीनन बहुत-सी चीज़ों में हमने कुछ सुधार अवश्य किया है, लेकिन हम अपने लक्ष्य से अभी भी बहुत दूर हैं, बल्कि कुछ मामलों में स्थिति बेहद चिंताजनक है। इस संबंध में भारत में सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े और कमज़ोर वर्गों की जनसंख्या और उनकी स्थिति का अंदाज़ा लगाने से हालात को समझने में आसानी होगी।

आज हम चांद पर पहुंच चुके हैं, लेकिल अभी भी हमारे देश की अधिकांश जनता कुपोषण, भुखमरी,

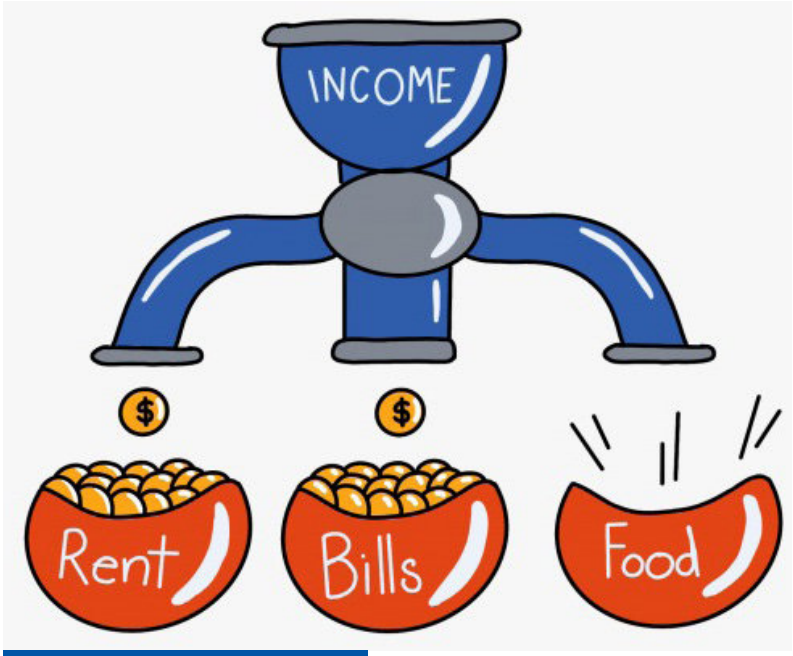
ग़रीबी और बेरोज़गारी से जूझ रही है। आज आज़ादी के 75 वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की अधिकांश जनता जीवन की बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित है। इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार करते हुए हमें सरकारी व सामाजिक स्तर पर कुछ साहसिक क़दम उठाने चाहिए।

इन हालात पर संजीदगी से न सिर्फ़ ग़ौर करना चाहिए बल्कि आर्थिक रूप से कमज़ोर, पीड़ितों एवं वंचितों के साथ खड़े रहना और उनके लिए संघर्ष करना हमारा धार्मिक, नैतिक और मानवीय कर्तव्य है। आज के इस चिंताजनक हालात में भी भलाई की संभावना मौजूद है। यदि हमारे राजनेता देश की ज़मीनी सच्चाइयों को सामने रखकर, नागरिकों के बीच समानता और उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए बेहतर आर्थिक नीतियों की ओर ध्यान देंगे तो कल्याण की राहें हमवार होंगी।

हम नागरिकों को भी इसमें अहम भूमिका निभाने की ओर ध्यान देना चाहिए। आज की परिस्थितियों पर शोक मानने में अपनी सारी ऊर्जा बर्बाद करने के बजाए हम आने वाले कल का अंदाज़ा करें और उन बहसों को उठाने की कोशिश करें कि देश के सभी लोगों को आर्थिक न्याय और समान अधिकार दिलाने के लिए देश में और क्या सुधार हो सकते हैं?

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या न्याय और बराबरी की है। हमारे यहां यह समस्या दुनिया के कुछ और हिस्सों की तरह केवल आर्थिक मुद्दों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में असमानता, अत्याचार, शोषण और अपमान सदियों से यहां की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था का हिस्सा है।

न्याय और समानता इस देश में हमारे



आज हम चांद पर पहुंच चुके हैं, लेकिल अभी भी हमारे देश की अधिकांश जनता कुपोषण, भुखमरी, ग़रीबी और बेरोज़गारी से जूझ रही है। आज आज़ादी के 75 वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की अधिकांश जनता जीवन की बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित है। इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार करते हुए हमें सरकारी व सामाजिक स्तर पर कुछ साहसिक क़दम उठाने चाहिए।

विमर्श का एक अहम मुद्दा होना चाहिए, बल्कि हमें तो न्याय और समानता का झंडावाहक बन जाना चाहिए ताकि यह हमारे सामूहिक अस्तित्व का महत्वपूर्ण संदर्भ, हमारी राजनीति और हमारी पहचान का अभिन्न अंग बन जाए। हमारे देश में न्याय से जुड़े कुछ बिंदु विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

1. आर्थिक न्याय यानी समाज के सभी वर्गों को जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं का अधिकार, देश के धन और अन्य संसाधनों का न्यायपूर्ण तरीक़े से बंटवारे के लिए समुचित नीतियां और धन के प्रवाह को अमीरों से ग़रीबों की ओर करने के लिए और शोषण और लूट-खसोट की रोक-थाम के लिए नीतिगत उपाय।

2. जाति, लिंग और समुदाय के आधार पर अत्याचार की रोकथाम। विशेष रूप से पिछड़े कहे जाने वाले वर्गों को सम्मानजनक जीवन उपलब्ध कराना। जातिवाद को ख़त्म करना, पिछड़ी जातियों को सशक्त बनाने और उन्हें सामाजिक रूप से ऊंचा उठाने के

लिए ज़्यादा प्रभावी नीतिगत उपाय।

3. सांस्कृतिक एवं वैचारिक समूहों को मान्यता प्रदान करना और उनको सामूहिक अधिकार दिलाना ताकि उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा अधिकार हासिल हों और उन्हें देश की सामूहिक व्यवस्था में मज़बूती मिले।

4. हमारे देश में अन्याय का सबसे बड़ा स्रोत देश की राजनीति है। नागरिकों में फूट डालना, उन्हें लड़ाना, दंगे कराना, कुछ वर्गों का शोषण करना, ये सब चुनाव जीतने के शॉर्टकट बन चुके हैं। राजनीतिक व्यवस्था की नए सिरे से ऐसी रूप-रेखा बनाना, जिसके नतीजे में यह सिलसिला रुके।

हमारे देश में, न्याय और समानता से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर बहस होती रही है, लेकिन आर्थिक न्याय ही सामाजिक न्याय का नींव है। आर्थिक न्याय के बिना हम सामाजिक न्याय की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस समस्या से निजात पाने के लिए सभी के लिए न्यूनतम वेतन/ मज़दूरी निर्देशित रोज़गार और सार्वभौमिक मूल वेतन एक पहल हो सकती है, साथ ही सरकारी नीतियों पर हावी होते पूंजीवादी प्रभाव को कमज़ोर करने की दिशा में निरंतर प्रयास होते रहना चाहिए। स्वाभाविक बात है कि देश की नीतिगत ख़ामियों से आंखें नहीं मूंदी जा सकती हैं।



इसलिए हमारे नीति नियंताओं को इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा और ऐसे प्रावधान करने होंगे जो आर्थिक असमानताओं को कम करने में मील का पत्थर साबित हों। आर्थिक सुधारों की रूप-रेखा कुछ ऐसे तय करनी होगी, जिससे कि आय की इस भारी असमानता को कम किया जा सके। इसके लिए यह ज़रूरी है कि सरकार काम करने के अपने तौर-तरीक़ों को बदले। जब तक सरकारों की प्राथमिकता में किसान, मज़दूर और ग़रीब तबक़े नहीं होंगे, इस समस्या को कम नहीं किया जा सकेगा। ■■

❊ अल्लाह और रसूल की पुकार पर लब्बैक कहो जबकि वो तुम्हें बुलाते हैं उस चीज़ की तरफ जिसमें तुम्हारे लिए ज़िंदगी है। (क़ुरआन) ❊ उस शख़्स से बेहतर किसकी बात हो सकती है जो अल्लाह की तरफ बुलाये और नेक अमल करे और कहे कि मैं मुसलमानों में से हूँ। (क़ुरआन)



हिन्दुस्तान के मशहूर दीनी-इल्मी, फिक्री और म्यारी अख़बार व रसाइल (पत्रिकाओं) का मुताला(अध्ययन)कीजिए

इस सिलसिले में हमारी ख़िदमात हासिल कीजिए :

पेपर – पत्रिका	प्रति कापी	सालाना खरीददारी
✪ कान्ति साप्ताहिक अख़बार	7/-	350/-
✪ कान्ति मासिक पत्रिका	30/-	350/-
✪ दावत उर्दू अख़बार साप्ताहिक	15/-	750/-
✪ जिंदगी–ए–नौ उर्दू महाना	35/-	400/-

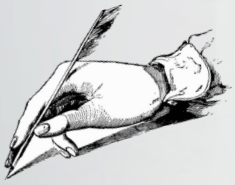
सालाना खरीददारी व ग्राहक बनने के लिए राब्ता करें :

AL FALAH True Success Both Worlds

अल फलाह

हक़ीक़ी कामयाबी दोनों जहानों में

अख़्तर नवाब
✆ 9926408118



कविता

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

विनोद कुमार शुक्ल

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था

हताशा को जानता था
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया

मैंने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ

मुझे वह नहीं जानता था
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था

हम दोनों साथ चले
दोनों एक-दूसरे को नहीं जानते थे

साथ चलने को जानते थे।

न्याय के साथ या न्याय के ख़िलाफ़ ?



उत्तर प्रदेश के संभल में मुग़लकालीन शाही जामा मस्जिद में कोर्ट के आदेश पर हुए सर्वेक्षण को लेकर भड़की हिंसा के चंद दिनों बाद ही राजस्थान के अजमेर की एक स्थानीय अदालत ने 13वीं सदी की अजमेर शरीफ़ दरगाह में सर्वेक्षण की मांग वाली याचिका स्वीकार कर ली। देश विभिन्न हिस्सों में इसी तरह की कई याचिकाएं लंबित हैं जो दावा करती हैं कि हिंदू मंदिरों के स्थल पर कथित तौर पर मस्जिदें या दरगाहें बनाई गई हैं। उत्तराखंड में उत्तरकाशी मस्जिद, यूपी में ज्ञानवापी मस्जिद और कर्नाटक में हुबली ईदगाह सहित कई स्थलों के मामलों में यही पैटर्न देखने को मिला।

ऐसे मामलों में वृद्धि चिंता और निराशा का विषय तो है ही, साथ ही ये मामले पूजा स्थल अधिनियम, 1991 की प्रासंगिकता पर भी सवाल उठाते हैं, यह अधिनियम अयोध्या मामले को छोड़कर 15 अगस्त, 1947 को मौजूद किसी भी पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को बदलने पर रोक लगाता है।

उल्लेखनीय है कि ज्ञानवापी मामले में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ की अध्यक्षता वाली शीर्ष अदालत की पीठ द्वारा 2022 में की गई टिप्पणी–कि यह अधिनियम किसी पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र का पता लगाने

समसामयिक



डॉ. प्रदीप कुमार

पर स्पष्ट रूप से रोक नहीं लगाता–से निचली अदालतों को ऐसी याचिकाओं पर विचार करने के लिए प्रोत्साहन मिला है। इसका नतीजा यह हुआ कि आज ज़िलों में तमाम मस्जिदों के धार्मिक चरित्र की जांच करने की मांग होने लगी है।

संभल जैसे मामले देश में ''एक धर्म, एक समुदाय और एक संस्कृति की सर्वोच्चता'' स्थापित करने के एक सनकी एजेंडे को दर्शाते हैं। इसके तहत, समानता और विविधता, लोकतंत्र और संविधान को कमज़ोर करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

हालांकि सुप्रीम कोर्ट के ताज़ा फ़ैसले से उम्मीद की किरण जगी है। सुप्रीम कोर्ट ने संभल कोर्ट की कार्यवाही पर रोक लगा दी है और मस्जिद समिति को हाईकोर्ट जाने को कहा है, साथ ही इस बात पर ज़ोर दिया है कि शांति और सद्भाव क़ायम रहना चाहिए, लेकिन विघटनकारी तत्वों द्वारा ऐसी जगहों को निशाना बनाना दुर्भाग्यपूर्ण है।

संभल में क्या हुआ और कैसे हुआ, इसका दूध का दूध और पानी का पानी होना चाहिए। इस विवाद को सियासी या सांप्रदायिक पाले में नहीं छोड़ा जा सकता। यह जांच निष्पक्ष रूप से यथोचित मक़ाम पर पहुंचनी चाहिए, ताकि सांप्रदायिकता की चिनगारी को न्याय की शीतल छाया में बुझाया जा सके। जिस तरह का अविश्वास संभल में दिख रहा है, उसे देखते हुए कार्यपालिका

और न्यायपालिका को पूरी तरह सचेत रहना होगा। फ़ैसले बिल्कुल क़ानून के अनुरूप करने होंगे। अभी देश अपने संविधान की 75वीं वर्षगांठ मना रहा है और संविधान की बुनियाद भी सामाजिक सद्भाव पर टिकी है।

आज सरकार की ज़िम्मेदारी तो है ही, आम लोगों पर भी बड़ी ज़िम्मेदारी है। किसी को भी यह इजाज़त नहीं है कि वह क़ानून को अपने हाथ में ले। साथ ही, जन-प्रतिनिधियों को भी निष्पक्ष भाव से जनसेवा पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। अगर वोट बैंक के आधार पर देखा जाएगा, स्थानीय संख्या बल के आधार पर देखा जाएगा, तो हम आसानी से समाधान तक नहीं पहुंच पाएंगे। सद्भाव का मार्ग खुले, सहज मन से ही यह तय होता है। सामाजिक नेताओं को भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी उपद्रव के समय स्वार्थवश पक्षपाती या अधूरा सच बोलना परोक्ष पत्थरबाज़ी से कम नहीं है।

काशी, मथुरा, भोजशाला, संभल, अजमेर और ऐसे ही न जाने कितने विवाद के मोर्चे सुलग रहे हैं। अतः यह संभलकर चलने का समय है। ऐसे में न्याय के मंदिरों को ज़्यादा सजग रहना होगा। ऐसे मामलों में पूरी तरह से तार्किक और तथ्य आधारित बने रहने में ही सबका भला है। भावनाओं में बहकर फ़ैसला लेने या घातक टिप्पणी करने की इजाज़त संविधान भी नहीं देता। अदालतों की राई समान दलील भी बाहर समाज में पहाड़ बनकर खड़ी हो सकती है।

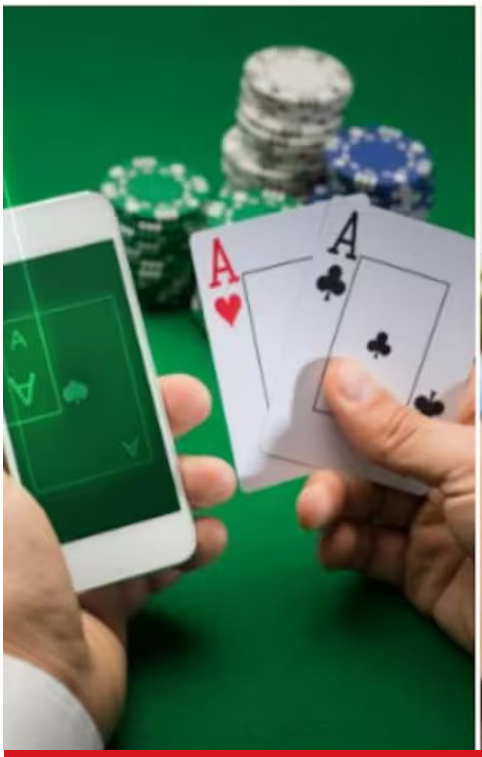
काशी, मथुरा, भोजशाला, संभल, अजमेर और ऐसे ही न जाने कितने विवाद के मोर्चे सुलग रहे हैं। अतः यह संभलकर चलने का समय है। ऐसे में न्याय के मंदिरों को ज्यादा सजग रहना होगा। ऐसे मामलों में पूरी तरह से तार्किक और तथ्य आधारित बने रहने में ही सबका भला है। भावनाओं में बहकर फैसला लेने या घातक टिप्पणी करने की इजाजत संविधान भी नहीं देता ।



उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट में पिछले दो साल से कई याचिकाएं लंबित हैं, जिसमें धार्मिक स्थल क़ानून 1991 की वैधानिकता को चुनौती दी गई थी। इसी कोर्ट के एक आदेश में कहा गया था कि किसी धर्मस्थल का धार्मिक स्वरूप वैज्ञानिक सर्वे के आधार पर सुनिश्चित करना, इसके स्वरूप को बदलना नहीं होगा। इसके बाद निचली अदालतों में लगातार अनेक मस्जिदों को हिन्दू मंदिरों के भग्नावशेष पर खड़ा होने के दावे आने लगे। सांप्रदायिक तनाव बढ़ने लगा।

संभल में प्रशासन और मुस्लिम समुदाय के बीच झड़प के बाद अब अजमेर शरीफ़ को शिव मंदिर के मलबे से बनाए जाने के दावे वाली याचिका पर कोर्ट ने एएसआई, अल्पसंख्यक मंत्रालय और दरगाह के इंतिज़ामिया को नोटिस भेजा है। विश्व हिन्दू परिषद मानता है कि 40 हज़ार मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बनाई गई हैं। यानी यह सिलसिला लगातार चलता रहेगा। यह समय है कि सुप्रीम कोर्ट धार्मिक स्थल अधिनियम-1991 की वैधानिकता और उसके प्रावधान 3 और 4 की स्पष्ट व्याख्या करे।

संसद ने इस क़ानून के ज़रिए अन्य धार्मिक स्थलों में संभावित विवाद पर हमेशा के लिए एक रोक लगाई। प्रावधान कहता है कि 15 अगस्त, 1947 के दिन तक जिस धार्मिक स्थल का जो स्वरूप था, वह न तो बदला जाएगा न ही कोई कोर्ट इससे संबंधित कोई वाद सुनेगी। अब सुप्रीम कोर्ट को तय करना है कि यह क़ानून जो भारतीय समाज में शांति ला सकता है, संविधान सम्मत है या नहीं। अनेकता में एकता भारत की बड़ी ख़ूबी है, जिसे बनाए रखने की ज़िम्मेदारी हम सभी पर है। ■■





दिखने लगे हैं बुरे नतीजे

आजकल ऑनलाइन जूए और सट्टेबाज़ी का चस्का जिस तरह लोगों को लग रहा है, वह भारतीय परिवारों के लिए परेशानी का सबब बन रहा है। कुछ मशहूर खिलाड़ियों और जानी-मानी हस्तियों ने 'गेमिंग ऐप' का जिस तरह भ्रमित कर देने वाला प्रचार किया है, उसके बुरे नतीजे साफ़ दिखने शुरू हो गए हैं। ऑनलाइन गेमिंग की आड़ में नए तौर-तरीक़े से सट्टेबाज़ी हो रही है और उसके शिकार हो रहे हैं किशोर और युवा। ऑनलाइन गेम की लत उन्हें इस जुए के नए जाल में फंसा रही है।

कुछ महीने पहले अलीगढ़ में भी एक लड़के ने ऐसी सट्टेबाज़ी में हज़ारों रुपये बर्बाद करने के बाद अपने ही अपहरण की झूठी कहानी रची थी। झांसी में टोडी फ़तेहपुर की छात्रा ने भी दोस्तों के साथ मिलकर वही कहानी दोहराई और अपने ही परिजनों से छह लाख रुपए की फ़िरौती मांगी। अलीगढ़ और झांसी का मामला ऐसी घटनाओं की एक कड़ी भर है।

ऐसे कई उदाहरण हैं, जब मध्यम वर्ग युवा ऑनलाइन सट्टेबाज़ी और

मंथन



जितेंद्र गौतम

ऑनलाइन गेमिंग में लाखों रुपये हार चुके हैं। कई मामलों में अपने भविष्य के लिए कोई उम्मीद न देखकर, उन्होंने आत्महत्या तक कर ली। यह समस्या, गांव और शहर, दोनों ही जगह अपनी जड़ें जमा चुकी है। भारत में अब ऑनलाइन सट्टेबाज़ी का बाज़ार 25,000 करोड़ सालाना का हो चुका है। ऑनलाइन गेमिंग उद्योग का बाज़ार भी लगभग इतना ही बड़ा है। तुलनात्मक रूप से देखें तो ऑनलाइन सट्टेबाज़ी और ऑनलाइन गेमिंग पर हर साल हम लगभग 50,000 करोड़ ख़र्च करते हैं और हैरत की बात यह है कि यह आंकड़ा संपूर्ण भारत के उच्च शिक्षा बजट से भी अधिक है।

ऑनलाइन सट्टेबाज़ी को हम तीन प्रकार से देख सकते हैं। पहला ऑनलाइन कैसिनो। यहां पर कैसीनो की भांति ताश और अन्य प्रकार से घर बैठे मोबाइल या कंप्यूटर से जुआ खेला जा सकता है। दूसरा प्रकार है, फैंटेसी लीग गेम्स जहां पर क्रिकेट, फुटबाल और अन्य चर्चित खेल के नतीजों पर लोग

सट्टा लगा सकते हैं। तीसरा प्रकार है वे साधारण ऑनलाइन गेम्स, जिन पर यूज़र आपस में पैसा लगा सकते हैं। इस श्रेणी में लूडो, सांपसीढ़ी, बिलियर्ड, तीन पत्ती जैसे सरल खेलों को जुए के रंग में रंग दिया जाता है। भारत में ऑनलाइन सट्टेबाज़ी और जुए के इतने बड़े पैमाने पर बढ़ने का कारण क्या है?

पहला, यह कि ऑनलाइन जुआ खेलते समय व्यक्ति पर्दे के पीछे एक अनजान शख़्स बनकर जुआ खेलता है। उसे अपनी पहचान सार्वजनिक होने का कोई अंदेशा नहीं रहता। हमारे समाज में जुआ खेलना अच्छा नहीं माना जाता और इसीलिए लोग खुलेआम जुआ खेलने में संकोच करते हैं, लेकिन जब कोई अपने मोबाइल फ़ोन से सट्टा खेलता है तो आसपास किसी को भनक तक नहीं लगती।



दूसरा कारण यह है कि ऑनलाइन सट्टे को संचालित करने वाली कंपनियां बेहद संगठित और निपुण तरीक़े से अपने मायाजाल से लोगों को रिझाती हैं। आलम यह है कि ये कंपनियां गृहणियों और कॉलेज जाने वाले युवाओं को सट्टा खेलकर परिवार में एक कमाऊ सदस्य बनने का झांसा देती हैं। चूंकि ये कंपनियां अब काफ़ी बड़ी हो चुकी हैं, इसलिए मोटी रक़म देकर सिनेमा और क्रिकेट जगत से बड़े-बड़े सितारों को विज्ञापन में दिखाकर और अधिक से अधिक लोगों को इस लत में घसीटती जा रही हैं। विडंबना यह है कि इस पर कोई रोक-टोक नहीं लग पा रही है। कंपनियां केवल यह बताकर कर्तव्य की इतिश्री कर लेती हैं कि इस खेल में आर्थिक जोखिम है और इसकी लत लग सकती है। तीसरा कारण सबसे विकराल है। ऑनलाइन सट्टेबाज़ी को रोकने का क़ानून न सिर्फ़ कमज़ोर है, बल्कि अस्पष्ट भी।

भारत में जुए को नियंत्रित करने वाला क़ानून पब्लिक गैंबलिंग एक्ट 1867 का बना हुआ है। इसके तहत जुआ खेलने और खिलाने वालों पर पुलिस और प्रशासन सख़्त कार्रवाई कर सकता है। इस क़ानून में जुए की परिभाषा को लेकर भ्रम है, क्योंकि यह "गेम ऑफ़ स्किल" और "गेम ऑफ़ चांस" को अलग-अलग मानता है। गेम ऑफ़ स्किल में शतरंज जैसे खेल हैं, जिसमें कौशल का उपयोग होता है। इसके विपरीत वे खेल, जिनमें पांसे या लॉटरी इस्तेमाल की जाती है और जो पूर्णतः भाग्य पर आधारित है, उसे 'गेम ऑफ़ चांस' कहा जाता है। भाग्य और कौशल के बीच की यह लकीर धूमिल है और ऑनलाइन युग में यह और भी पेचीदा हो चुकी है। इसी अस्पष्टता का लाभ उठाते हुए भारत में देखते ही देखते ऑनलाइन सट्टेबाज़ी ने अपने पांव पसार लिए हैं। ऑनलाइन सट्टेबाज़ी की कंपनियों के पीछे कई बार चीन से बड़ी मात्रा में निवेश हुआ है। ऐसी अनेक कंपनियां देश के बाहर सक्रिय हैं।

शुरू में कमाई हुई, फिर कब सारी पूंजी लुट गई, इसका अहसास तब होता है जब पीड़ित को यह पता चलता है कि दोस्तों से कर्ज लिए रुपए भी डूब गए। यह भी संभव है कि सट्टेबाज़ी कराने वाली कंपनियां युवाओं की मनोस्थिति भांप कर उनको जाल में फंसाती हों। इस तरह के खेल में उलझना एक अंधी सुरंग में भटक जाने की तरह है। देश के युवाओं और किशोरों को जुए के इस जाल से बचाने की ज़रूरत है।

ऑनलाइन सट्टेबाज़ी की लत जिस प्रकार बड़ी संख्या में लोगों को जकड़ रही है, वह सरकार और समाज के लिए गहरी चिंता का विषय बनना चाहिए। इस समस्या का समाधान क्या हो सकता है ? सबसे पहले हमें जुए को



नियंत्रित करने वाले क़ानून को आज के ऑनलाइन परिदृश्य के अनुरूप ढालना होगा और ऐसे उपाय करने होंगे कि जिससे ऑनलाइन सट्टेबाज़ी वाली कंपनियां मनमानी न करने पाएं। फ़िलहाल उन पर कोई प्रभावी रोक-टोक नहीं। हमें बच्चों और युवाओं को किसी भी प्रकार के ऑनलाइन सट्टे से बिल्कुल दूर रखना होगा। ऑनलाइन गेम्स या सट्टे में कितना पैसा लग सकता है, इस पर नियंत्रण आवश्यक है। ऑनलाइन गेम्स मनोरंजन का स्रोत हो सकते हैं, पर उन्हें आय का साधन नहीं बनाया जा सकता। यह समझा जाना चाहिए कि ऑनलाइन सट्टे में सदैव सट्टा खिलाने वाला ही जीतता है।

ऑनलाइन सट्टेबाज़ी के बढ़ते चलन को देखते हुए स्कूलों में उसके प्रति सजगता फैलाना अति आवश्यक है। वे लोग जो अपने आपको या अपने परिवार के लोगों को सट्टा खेलने की आदत से ग्रस्त पा रहे हैं, उनके लिए एक्सपर्ट हेल्पलाइन जैसी सुविधाएं ग़ैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से मुहैया कराना आवश्यक हो गया है, ताकि उन्हें वक़्त रहते बचाया जा सके। कई मामलों में यह देखने में आ रहा है कि बच्चे ऑनलाइन गेम्स खेलते-खेलते सट्टेबाज़ी तक पहुंच जाते हैं और अभिभावकों को जब तक पता चलता है, तब तक नुक़सान हो चुका होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जुए को नशे से भी बुरी लत बताई थी, क्योंकि जुए से होने वाला नुक़सान स्थाई होता है और परिवार एवं समाज, दोनों को खोखला करता है। आज उसी सामाजिक बुराई को ऑनलाइन सट्टेबाज़ी के रूप में मोबाइल और कंप्यूटर के ज़रिये एक चमकीले आवरण में पेश किया जा रहा है।

ऐसे हज़ारों युवा हैं जो रोज़ लाखों रुपये गंवा रहे हैं और जिन पर किसी की नज़र नहीं जा पाती। सवाल है कि किसी तरह की सट्टेबाज़ी ग़ैर-क़ानूनी होने के बावजूद चोरी-छिपे या खुलेआम विज्ञापन देकर युवाओं को अगर जुए की लत में फंसाया जा रहा है, तो इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है ? ऑनलाइन गेमिंग के नाम पर चल रहे इस खेल को कौन बढ़ावा दे रहा है और इसके नतीजे क्या आ रहे हैं, यह क़ानून की नज़र में अवश्य होना चाहिए।

पिछले कुछ समय से कई 'बेटिंग ऐप्स' और वेबसाइटों पर खुलेआम सट्टेबाज़ी हो रही है। पहली बार कोई सट्टा जीतता है, तो फिर उसके बाद उसके लिए एक दलदल तैयार हो जाता है, जिसमें घुसने के बाद वह निकल नहीं पाता। शुरू में कमाई हुई, फिर कब सारी पूंजी लुट गई, इसका एहसास तब होता है जब पीड़ित को यह पता चलता है कि दोस्तों से क़र्ज़ लिए रुपए भी डूब गए। यह भी संभव है कि सट्टेबाज़ी कराने वाली कंपनियां युवाओं की मनोस्थिति भांप कर उनको जाल में फंसाती हों। इस तरह के खेल में उलझना एक अंधी सुरंग में भटक जाने की तरह है। देश के युवाओं और किशोरों को जुए के इस जाल से बचाने की ज़रूरत है। ■■

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

Sermad Traders

Agriculture Input Dealer

B.H. Road, Tarikere, Chikkamagalore District



جس کو اللہ ہدایت دینے
کا فیصلہ کرتا ہے اس کے
سینے کو اسلام کے لیے
کھول دیتا ہے۔ (مشکوۃ)

इस्लाम, आदिवासियत और हिंदुत्व

संवाद



डॉ. अभय कुमार



प्रस्तुत संवाद लेखक अभय कुमार और झारखंड के एक आदिवासी छात्र के बीच बातचीत का संपादित अंश है। अभय कुमार ने यह संवाद पिछली सर्दियों के अंत में तब रिकार्ड किया था, जब उन्हें झारखंड के एक आदिवासी क्षेत्र में स्थित एक कॉलेज द्वारा उत्तर-उपनिवेशवाद पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया था। मुस्लिम विरोधी नफ़रत, जो उत्तर भारत के जाति-आधारित समाजों में पहले से ही गहराई तक फैली हुई है, अब आदिवासी क्षेत्रों में भी अपनी जड़ें जमा रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में पढ़ें यह बातचीत। यहां सुरक्षा के दृष्टिकोण से हम छात्र का छद्म नाम दयाशंकर के रूप में उद्धृत कर रहे हैं और यह भी कहना चाहेंगे कि यह छात्र पूरे आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधि नहीं है।

दयाशंकर (द.) : ऐसा लगता है कि आपको मुसलमानों से विशेष लगाव है। मैंने देखा है कि आपके कई लेखों में मुसलमानों के प्रति सहानुभूति या समर्थन व्यक्त किया गया है। ऐसा क्यों है?

अभय कुमार (अ.कु.) : मुसलमानों के प्रति लगाव रखने में क्या ग़लत है? क्या आप इस तथ्य से इन्कार करेंगे कि भारत में कई धर्मों और आस्थाओं के लोग रहते हैं? और जो लोग किसी संस्थागत धर्म को नहीं मानते, वे भी भारत के उतने ही नागरिक हैं। उदाहरण के लिए, आदिवासी समुदाय, जिससे आप आते हैं, को ही देख लीजिए। मैंने अपनी आंखों से देखा है कि आदिवासी समाज में धार्मिक कट्टरता बहुत कम है। पूजा स्थलों को लेकर संघर्ष शायद ही कभी होता है। आदिवासी समुदायों में पवित्र ग्रंथों की व्याख्या को लेकर ख़ून-ख़राबे का कोई इतिहास नहीं है।

भारत में वे लोग भी बड़ी संख्या में रहते हैं जो किसी धर्म को नहीं मानते, और वे भी इस देश के समान नागरिक हैं। हमारा संविधान सभी को समान अधिकार और औपचारिक समानता प्रदान करता है। लेकिन, दुर्भाग्यवश, हिंदू दक्षिणपंथ के उदय के साथ भारत में एक नकारात्मक प्रवृत्ति उभर रही है, जहां एक विशेष धार्मिक समुदाय को सच्चा भारतीय और राष्ट्र का वफ़ादार माना जाता है, जबकि अन्य–विशेष रूप से मुसलमान और ईसाई–को विदेशी धर्मों के अनुयायी मानकर उन्हें संदिग्ध देशभक्त के रूप में देखा जाता है।

मुसलमानों को तथाकथित मेनस्ट्रीम से अलग-थलग और "ग़ैर" बनाने की यह प्रक्रिया भारत में सौ साल से भी अधिक पुरानी है। औपनिवेशिक काल के दौरान, हिंदू पुनरुत्थानवादी आंदोलनों ने राष्ट्र को ब्राह्मणवादी संस्कृति के संदर्भ में परिभाषित करने की कोशिश की। जब उन्हें यह एहसास हुआ कि आधुनिक राजनीति संख्या पर आधारित है–यानी बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यकों पर शासन करेगा–तब उन्होंने ब्राह्मणवाद को हिंदू धर्म के रूप में लोकप्रिय बनाने की कोशिश की। हालांकि, उच्च जाति के पुनरुत्थानवादी सिर्फ़ दिखावे के लिए वंचित वर्गों की बात करते थे।

आज भी, यह प्रक्रिया जारी है। जो दक्षिणपंथी प्रोपेगंडा से प्रभावित हैं, यह मानने लगे हैं कि मुसलमान शत्रु हैं और आदिवासी समाज को उनसे ख़तरा है। यह नैरेटिव पूरी तरह से झूठ और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण पर आधारित है, जिसे राजनीतिक लाभ के लिए फैलाया जा रहा है। आदिवासी और मुसलमान दोनों ही इस देश के वंचित वर्ग हैं, और उन्हें एक-दूसरे से अलग करने का प्रयास सिर्फ़ विभाजनकारी राजनीति का हिस्सा है।

हमारे राष्ट्रवादी आंदोलन में कई धाराएं थीं, जिनमें धर्मनिरपेक्षता की एक मज़बूत धारा भी शामिल थी।

लेकिन धीरे-धीरे हिंदू राष्ट्रवादियों ने धर्मनिरपेक्ष संगठनों में घुसपैठ की और राष्ट्रवाद की आड़ में उच्च जातियों के हितों को आगे बढ़ाया। मुझे नहीं लगता कि देश का विभाजन किसी एक नेता के कारण हुआ था। कुछ इतिहासकार अक्सर एक व्यक्ति को नायक और दूसरे को खलनायक के रूप में पेश करते हैं, लेकिन हमें ऐसी सरलीकृत धारणाओं से बचना चाहिए।

भारतीय मुसलमानों के ख़िलाफ़ भेदभाव राज्य के स्तर पर व्यवस्थित है। सरकारें आती-जाती रहीं, लेकिन मुसलमानों की स्थिति में कोई ख़ास सुधार नहीं हुआ। उनका प्रतिनिधित्व संसद, विधानसभाओं और सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों की नौकरियों में उनकी आबादी के अनुपात में नहीं है, लेकिन जेलों में उनका प्रतिनिधित्व अत्यधिक है। वे सांप्रदायिक दंगों से पीड़ित होते रहे हैं, और उनके इतिहास और संस्कृति को स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया है। भाजपा-शासित राज्यों में बुलडोज़र का उपयोग कर उनके घरों को ध्वस्त किया जा रहा है।

अब आप ही बताइए, क्या हमें मुसलमानों के लिए न्याय की मांग नहीं करनी चाहिए? क्या वे भारत के समान नागरिक नहीं हैं? अगर मुसलमानों को पिछड़ा रखा जाएगा, तो क्या हमारा देश प्रगति कर सकता है? क्या एक लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष देश में किसी व्यक्ति के साथ उसके धर्म के आधार पर भेदभाव होना चाहिए? यदि मैं अपने लेखन और एक्टिविज़्म के ज़रिए मुसलमानों के लिए कुछ कर सका हूं, और अगर इससे किसी एक भी मुसलमान की मदद हुई है, तो मैं इसे अपनी ज़िंदगी की सफलता मानूंगा।

द. : जब मुसलमानों के घरों पर बुलडोजर चलाया जाता है, तो आप उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। लेकिन क्या आप यह नहीं देखते कि कुछ मुस्लिम कट्टरपंथी हिंदुओं के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं और उन्हें मार रहे हैं?

अ.कु. : लोकतंत्र क़ानून के शासन पर आधारित होता है। यह धर्मनिरपेक्षता और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्मान के बिना जीवित नहीं रह सकता। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में आरोपी या दोषी व्यक्ति के घर को सज़ा के तौर पर गिराना उचित नहीं है। अगर मैं कोई अपराध करता हूं, तो मेरे परिवार को बेघर कैसे किया जा सकता है? क़ानून कहता है कि सज़ा अपराध के अनुपात में होनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, अगर मैं चोरी करता हूं, तो मुझे हत्या की सज़ा नहीं दी जा सकती।

भाजपा-शासित राज्यों में कई ऐसी घटनाएं दर्ज की गई हैं, जहां मुसलमानों के घरों और कार्यस्थलों को बुलडोजर से गिराकर उन्हें सज़ा दी गई। मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने यह दस्तावेज़ किया है कि इनमें से कई पीड़ित वे लोग थे जिन्होंने ग़लत सरकारी नीतियों के ख़िलाफ़ शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन किया था। संविधान और सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि शांतिपूर्ण विरोध को दबाया नहीं जा सकता, क्योंकि असहमति एक जीवंत लोकतंत्र की पहचान है। फिर भी, मुसलमानों को जेल में डाला गया है और उनके घरों को केवल विरोध जताने के कारण ज़मींदोज़ कर दिया गया है। कोई इन बुलडोजर कार्रवाइयों को कैसे सही ठहरा सकता है?

'एमनेस्टी इंटरनेशनल' जैसे मानवाधिकार संगठनों की हालिया रिपोर्टों ने दिखाया है कि ये कार्रवाइयां राष्ट्रीय क़ानून और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों का उल्लंघन करती हैं। अधिकतर मामलों में पीड़ितों को क़ानूनी प्रक्रिया का समय नहीं दिया गया, उनके घरों को जल्दबाज़ी में ध्वस्त

कान्ति साप्ताहिक और कान्ति मासिक के सभी पाठक

कृपया ध्यान दें!

अपना पूरा नाम : .....

पता : .....

पोस्ट ऑफिस : .....

डिस्ट्रिक्ट : .....स्टेट : .....पिन : .....

कांटेक्ट नंबर : .....

नीचे दिए गए व्हाट्सऐप नम्बर पर भेजने की मेहरबानी करें।

धन्यवाद!

व्हाट्सऐप नंबर : 98187 99223

नोट : अपना कांटेक्ट नंबर लिखना न भूलें।

कर दिया गया, और उनके परिवारों के साथ मारपीट की गई। सुप्रीम कोर्ट ने हस्तक्षेप कर इन कार्रवाइयों पर रोक लगाने का आदेश दिया है और देशभर में दिशा-निर्देश पेश करने का वादा किया है ताकि किसी समुदाय को ग़लत तरीक़े से निशाना न बनाया जाए।

क्या मैंने बुलडोजर कार्रवाई के ख़िलाफ़ बोलकर कुछ ग़लत किया है? एक आदिवासी के रूप में, आप मुसलमानों के दर्द को समझ सकते हैं, क्योंकि आज़ादी के बाद से विकास के नाम पर सबसे ज़्यादा विस्थापन आदिवासियों का ही हुआ है। चाहे बांध हो, खनन हो या औद्योगीकरण– विस्थापित कौन हो रहे हैं? इसका उत्तर हम सभी जानते हैं : आदिवासी। क्या आपने कभी अमीरों के घर गिरते हुए देखे हैं? नहीं, क्योंकि वे ताक़तवर हैं। मुसलमानों के घर इसलिए गिराए जा रहे हैं क्योंकि उन्हें कमज़ोर कर दिया गया है। उनके घरों को तोड़कर शासक वर्ग उन्हें सबक़ सिखाना चाहता है और उन्हें डराना चाहता है कि अगर मुसलमान अपनी आवाज़ उठाएंगे, तो उन्हें कठोर सज़ा दी जाएगी।

अगर समाज के किसी भी समुदाय के साथ बुरा व्यवहार या भेदभाव होता है, तो देश तरक़्क़ी नहीं कर सकता। एक पत्रकार के रूप में, जब मैं मुसलमानों और अन्य हाशिए पर पड़े समुदायों के मुद्दों के बारे में लिखता हूं, तो मैं किसी पर दया नहीं कर रहा हूं। एक पत्रकार का कर्तव्य है वंचितों के संघर्षों को उजागर करना।

जहां तक आपके इस दावे का सवाल है कि मुसलमान मुझे या आपको "काफ़िर" कहते हैं, तो यह सच नहीं है। मैं अपना अनुभव साझा करना चाहता हूं। मैंने पटना के सब्ज़ीबाग़ इलाक़े में चार साल बिताए, जो मुख्य रूप से मुस्लिम आबादी वाला क्षेत्र है। मैंने कभी किसी मुसलमान को मुझे "काफ़िर" कहते नहीं सुना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कुछ मुसलमान ऐसा नहीं मानते होंगे, लेकिन क्या हमें उन्हें पूरे मुस्लिम समुदाय का प्रतिनिधि मानना चाहिए? इसी तरह, कई हिंदू मुसलमानों के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं, लेकिन क्या हम उन्हें सभी हिंदुओं का प्रवक्ता मान सकते हैं? मुझे यक़ीन है कि आपका जवाब होगा–नहीं।

मैंने क़ुरआन भी पढ़ा है, और यह अपने अनुयायियों को अन्य धर्मों के अनुयायियों का अनादर न करने की शिक्षा देता है ताकि वे बदले में इस्लाम के बारे में बुरा न कहें। क़ुरआन एक साथ ईश्वर की पूजा और मानवता की सेवा– जिसमें ग़ैर-मुस्लिम भी शामिल हैं–पर ज़ोर देता है। इस्लामी इतिहास से पता चलता है कि पैग़म्बर मुहम्मद ने भी ग़ैर-मुसलमानों के साथ गठबंधन बनाए और उनके साथ उचित व्यवहार की वकालत की। मुस्लिम शासन के दौरान भी, कुछ अपवादों को छोड़कर, अल्पसंख्यकों को संरक्षण दिया गया था।

आपका यह दावा कि मुसलमान बड़े पैमाने पर हिंदुओं की हत्या कर रहे हैं, ग़लत और बेबुनियाद है। अगर ऐसा हो रहा होता, तो इसके पुख़्ता प्रमाण होते। हां, कुछ घटनाएं हो सकती हैं जहां किसी मुसलमान ने किसी हिंदू पर हमला किया हो। लेकिन ऐसी घटनाएं अपवाद हैं। और ऐसे मामलों में क़ानून के तहत हत्यारे के ख़िलाफ़ कार्रवाई भी होती है। आपके इस दावे का कि मुसलमानों द्वारा हिंदुओं की बड़े पैमाने पर हत्या की जा रही है, कोई ठोस आधार नहीं है।

द. : इस्लाम का आतंकवाद से संबंध है, और इस धर्म से कई आतंकवादी निकले हैं। मुझे लगता है कि इस धर्म में बुनियादी तौर पर कुछ गड़बड़ है। वरना इतने सारे आतंकवादी एक ही धर्म से क्यों आते?

अ.कु. : इस्लाम और आतंकवाद को एक साथ जोड़ना एक ख़तरनाक और ग़लत धारणा है। हर धर्म में कुछ कट्टरपंथी तत्व होते हैं, लेकिन इसे पूरी आबादी या धर्म के बारे में सामान्यीकरण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

अगर समाज के किसी भी समुदाय के साथ बुरा व्यवहार या भेदभाव होता है, तो देश तरक़्क़ी नहीं कर सकता। एक पत्रकार के रूप में, जब मैं मुसलमानों और अन्य हाशिए पर पड़े समुदायों के मुद्दों के बारे में लिखता हूं, तो यह दया नहीं है। एक पत्रकार का कर्तव्य है कि वह वंचितों के संघर्षों को उजागर करे।

रही बात आतंकवाद की तो यह किसी एक धर्म से जुड़ा नहीं है। दहशतगर्द किसी भी धर्म से हो सकते हैं, या वे नास्तिक भी हो सकते हैं। ऐसा कोई अध्ययन नहीं है जो यह साबित करे कि सभी आतंकवादी मुसलमान हैं, और न ही कोई विश्वसनीय डेटा यह दर्शाता है कि मुस्लिम संचालित आतंकवादी संगठनों की संख्या वैश्विक स्तर पर ग़ैर-मुस्लिम संगठनों से अधिक है। वास्तव में, मुसलमान ख़ुद आतंकवाद के सबसे बड़े पीड़ितों में से हैं।

अगर आप आतंकवाद की जांच करें, तो पाएंगे कि इसकी परिभाषा भी सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं की गई है। ऐतिहासिक रूप से, आतंकवादी की छवि बदलती रही है। आज जिसे आतंकवादी कहा जाता है, उसे कल कोई स्वतंत्रता सेनानी मान सकता है, और इसके विपरीत, आज का देशभक्त कल का आतंकवादी घोषित हो सकता है। कई विद्वान मानते हैं कि मुसलमानों

को आतंकवादी के रूप में चित्रित करने का चलन शीत युद्ध के ख़ात्मे के बाद बढ़ा है।

आतंकवाद को सही से समझने के लिए उसके ऐतिहासिक, राजनीतिक, और आर्थिक आयामों का अध्ययन ज़रूरी है। केवल धार्मिक या सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखने से आपकी समझ अधूरी रह जाएगी। आपको आतंकवाद और हथियार उद्योग के बीच संबंध को भी देखना होगा। ख़ुद से पूछें : डर, ख़ौफ़, नफ़रत, पूर्वाग्रह और असुरक्षा का माहौल बनाये रखने से सबसे ज़्यादा किसका फ़ायदा हो रहा है?

आदिवासी इलाक़ों में भी, जो लोग अपनी ज़मीन और संसाधनों की रक्षा के लिए लड़ते हैं, उन्हें आतंकवाद विरोधी क़ानूनों के तहत गिरफ़्तार किया जाता है। क्या आप आदिवासियों को सिर्फ़ इसलिए आतंकवादी कहेंगे क्योंकि वे अपने अधिकारों के लिए खड़े हो रहे हैं?

मैं आपके इस विचार से भी असहमत हूं कि इस्लाम स्वाभाविक रूप से हिंसक है। मैंने क़ुरआन पढ़ी है, और इसमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि अपने अनुयायियों को दूसरों को मारना चाहिए। क़ुरआन की शिक्षाओं का मूल ईश्वर की पूजा और मानवता की सेवा पर आधारित है।

पैग़म्बर मुहम्मद का जीवन देखें। उन्होंने हमेशा शांति स्थापित करने और युद्ध से बचने की कोशिश की। उन्होंने केवल तभी युद्ध किया जब कोई और विकल्प नहीं बचा था, और तब भी केवल आत्मरक्षा के लिए। अगर आपको मेरे शब्दों पर संदेह है, तो मैं आपको क़ुरआन पढ़ने के लिए आमंत्रित करता हूं। मुझे आपको इसकी एक प्रति देने में ख़ुशी होगी।

द. : क्या मुसलमान ही अल्पसंख्यक हैं? आदिवासी क्या हैं? क्या वे भी अल्पसंख्यक नहीं हैं? आपने आदिवासियों के लिए क्या किया है?

अ.कु. : मैंने कभी यह दावा नहीं किया कि मुसलमान ही एकमात्र अल्पसंख्यक हैं। क़ानूनी रूप से, अल्पसंख्यकों को अक्सर धर्म के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है, और धर्म एक महत्वपूर्ण मानदंड है। लेकिन अल्पसंख्यक की मेरी समझ बाबासाहेब आंबेडकर के कार्यों से प्रभावित है। उनकी पुस्तक 'स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज़' में, अंबेडकर ने अल्पसंख्यक की एक व्यापक परिभाषा दी है। उन्होंने कहा कि किसी समुदाय को अल्पसंख्यक मानने के लिए उसकी "सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति" का मूल्यांकन करना चाहिए।

इस परिभाषा के अनुसार, मेरा मानना है कि आदिवासी भी अल्पसंख्यक हैं। सरकारी आंकड़े बार-बार दिखाते हैं कि आदिवासी लगभग हर विकास सूचकांक में पिछड़ रहे हैं। ग़लत विकास नीतियों ने उनके जीवन, आजीविका और संस्कृति को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। उनके संसाधनों पर कॉरपोरेट-राज्य गठबंधन ने क़ब्ज़ा किया है, और पिछले 80 वर्षों में आदिवासी इलाक़ों की जनसांख्यिकी बदल गई है।

हालांकि, इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ये बाहरी लोग केवल मुसलमान हैं। हिंदू दक्षिणपंथियों के दावों के विपरीत, झारखंड का इतिहास बताता है कि आदिवासी और मुसलमान लंबे समय से शांतिपूर्वक साथ रह रहे हैं। झारखंड के ज़्यादातर मुसलमान पसमांदा समुदाय से आते हैं। उनमें से एक अंसारी बिरादरी है, जो पारंपरिक रूप से बुनकर समुदाय हैं और आदिवासी क्षेत्रों के लिए कपड़े बनाते हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से, पसमांदा और दलित मुसलमान आदिवासियों के साथ कई सांस्कृतिक प्रथाएं साझा करते हैं, और उनके बीच कोई संघर्ष का इतिहास नहीं है। हिंदू दक्षिणपंथियों के उदय ने इस शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में इस्लामोफ़ोबिया का बीज बो दिया है।

हिंदू दक्षिणपंथी आदिवासी क्षेत्रों में सत्ता हासिल करना चाहते हैं ताकि कॉरपोरेट्स इन क्षेत्रों के संसाधनों का दोहन कर सकें। वे समझते हैं कि आदिवासी और मुस्लिम एकता उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के लिए एक बड़ी बाधा बन सकती है। इसलिए, आदिवासियों और मुसलमानों के बीच जान-बूझकर ग़लतफ़हमियां पैदा की जा रही हैं। यह एकता कमज़ोर होने से धर्मनिरपेक्ष ताक़तें भी कमज़ोर होती हैं, और हिंदू दक्षिणपंथियों के लिए सत्ता तक पहुंचने का रास्ता खुल जाता है।

समाज के प्रभुत्वशाली हितों के संरक्षक के रूप में, हिंदू दक्षिणपंथी अक्सर मुसलमानों को बलि का बकरा बनाते हैं और उन्हें ग़ैर-मुसलमानों के लिए ख़तरे के रूप में पेश करते हैं।

द. : मुसलमानों द्वारा आदिवासियों की ज़मीनें हड़पी जा रही हैं, जिससे आदिवासी विस्थापित हो रहे हैं और हाशिए पर जा रहे हैं। इस पर आपकी क्या राय है?

अ.कु. : जैसा कि मैंने पहले बताया, समाज में प्रभावशाली ताक़तें अक्सर मुसलमानों को ख़तरे के रूप में पेश करके असली शोषण के स्रोतों से ध्यान भटकाती हैं। आपने देखा होगा कि भाजपा नेता झारखंड में बांग्लादेशी और रोहिंग्या घुसपैठ के मुद्दे को विधानसभा चुनावों के दौरान प्रमुखता से उठाते हैं।

एक पल के लिए मान लें कि झारखंड में बांग्लादेश और म्यांमार से घुसपैठ हो रही है। ऐसे में सवाल यह उठता है कि इसके लिए किसे दोष देना चाहिए– आदिवासी मुख्यमंत्री हेमंत सोरेन को, या प्रधानमंत्री मोदी की केंद्र सरकार को?

सीमा सुरक्षा केंद्र सरकार की ज़िम्मेदारी है, और अगर घुसपैठ हो रही है, तो सवाल केंद्र की सुरक्षा एजेंसियों पर उठना चाहिए, न कि इसे केवल चुनावी मुद्दा बनाया जाना चाहिए। इस कथित घुसपैठ के समर्थन में कोई आधिकारिक डेटा या पुख़्ता प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि स्थानीय स्तर पर कुछ आदिवासी और मुस्लिम समुदायों के बीच संघर्ष नहीं हो सकता, लेकिन ये किसी बड़ी राजनीतिक साज़िश का हिस्सा नहीं हैं और न ही राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कोई गंभीर ख़तरा हैं। चुनावी मौसम में आदिवासी मुख्यमंत्री को कमज़ोर करने और मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए ऐसी अफ़वाहें फैलाई जाती हैं कि मुसलमान आदिवासियों की ज़मीनें हड़प रहे हैं, महिलाओं का अपहरण कर रहे हैं, और जबरन धर्म परिवर्तन करा रहे हैं। ये दुष्प्रचार अक्सर राजनीतिक लाभ के लिए बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए जाते हैं।

द. : ऐसी ख़बरें भी आई हैं कि आदिवासियों को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा है। क्या आप इन मुद्दों को नज़रअंदाज़ करेंगे?

अ.कु. : इस बात का कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है कि मुसलमान आदिवासियों को जबरन इस्लाम धर्म अपनाने पर मजबूर कर रहे हैं। हम एक लोकतंत्र में रहते हैं–क्या आप वास्तव में मानते हैं कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक अल्पसंख्यक समुदाय बहुसंख्यक समुदाय के सदस्यों को जबरन धर्म परिवर्तन करा सकता है? क्या आपने कभी किसी ऐसे व्यक्ति से बात की है जो मुसलमानों द्वारा जबरन धर्म परिवर्तन का शिकार हुआ हो?

अगर उपनिवेशवाद से पहले, जब मुसलमान भारत में सत्ता में थे, उन्होंने आदिवासियों को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर नहीं किया, तो क्या आपको लगता है कि स्वतंत्र भारत में, जब वे सबसे अधिक हाशिए पर और भेदभाव का शिकार समुदायों में से एक हैं, वे ऐसा कर सकते हैं?

मीडिया अक्सर मुसलमानों द्वारा जबरन धर्म परिवर्तन की अफ़वाहें फैलाता है, लेकिन आरएसएस द्वारा आदिवासियों को हिंदू धर्म में शामिल करने के लंबे समय से चल रहे प्रयासों पर चुप रहता है। उदाहरण के लिए, अगर आदिवासियों की सरना धर्म की पहचान को जनगणना में आधिकारिक मान्यता नहीं मिल रही है, तो यह एक बड़ा मुद्दा नहीं है?

बहुत से आदिवासी हिंदू धर्म में विलीन नहीं होना चाहते और सरना धर्म को मान्यता देने की मांग कर रहे हैं, फिर भी उनकी मांगें अनसुनी रह जाती हैं। क्या यह ज़्यादा गंभीर मसला नहीं है? हमें इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि आख़िर क्यों आदिवासियों को अपनी पहचान बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

द. : आदिवासी समुदायों को कुछ मुस्लिम समूहों की ओर से हिंसा, धमकियों और डराने-धमकाने का सामना करना पड़ा है। क्या आप इन तथ्यों से इन्कार करेंगे?

अ.कु. : जैसा कि मैंने पहले कहा था, आदिवासियों और मुसलमानों के बीच स्थानीय स्तर पर लड़ाई-झगड़े हो सकते हैं। यह स्वाभाविक है, ख़ासकर अगर कोई आदिवासी भूमिहीन मज़दूर हो और कोई मुसलमान ज़मींदार हो– तो वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसी तरह, अगर कोई मुस्लिम राजमिस्त्री किसी आदिवासी के लिए घर बना रहा है, तो मज़दूरी को लेकर विवाद हो सकता है। इन संघर्षों की जड़ आर्थिक और वर्ग-संबंधी मुद्दों में होती है, न कि धार्मिक मतभेदों में।

मैं यह नहीं कहता कि ऐसे छोटे-मोटे संघर्ष नहीं होते, लेकिन ये आदिवासियों और मुसलमानों के बीच किसी बड़े टकराव का संकेत नहीं देते। आदिवासी और मुस्लिम के बीच झगड़ों की बात करने वाले अक्सर इस पर ख़ामोश रहते हैं कि दोनों समुदायों के बीच मेल-जोल और सहयोग भी हुआ है। सदियों से झारखंड जैसे राज्यों में दोनों समुदायों ने साझा सांस्कृतिक और सामाजिक वास्तविकताओं को अपनाया है। आदिवासी और मुसलमान दोनों ही बड़े पैमाने पर हाशिए पर हैं और वंचित हैं। वे उच्च जाति के स्वार्थ और कॉर्पोरेट हितों द्वारा शोषण के शिकार हैं।

ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य या डेटा उपलब्ध नहीं है जो यह दर्शाता हो कि मुसलमान आदिवासियों के ख़िलाफ़ हिंसा के मुख्य स्रोत हैं। बड़ी सच्चाई यह है कि दोनों समुदाय राज्य के भेदभाव और कॉर्पोरेट शोषण का सामना कर रहे हैं। हमें इन साझा संघर्षों को पहचानने और उन्हें सुलझाने पर ध्यान देना चाहिए, न कि एक हाशिए पर पड़े समूह को दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ा करने पर।

हमें इन समुदायों के आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना होगा। आदिवासी और मुस्लिम दोनों का शोषण हो रहा है, और यही हमारी चिंता का प्रमुख विषय होना चाहिए। ■■



सामाजिक गणतंत्र का सपना अधूरा

“संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, उसे लागू करने वाले ग़लत होंगे तो संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाएगी।” –डॉ. भीम राव आम्बेडकर

विशेष



संपादन प्रभाग

गणतांत्रिक शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है, शायद यही सोचकर हमारे पूर्वजों ने भारत का संविधान बनाया और आज़ादी के बाद 26 जनवरी, 1950 को भारत, संसदीय गणतंत्र हो गया। आज हमारा देश संसदीय गंणतंत्र के सात दशक से भी ज़्यादा का समय पूरा कर चुका है। आज हम भारत को दुनिया का सबसे बड़ा गणतंत्र बताते हुए गौरव का अनुभव करते हैं, लेकिन बात जब गणतांत्रिक मूल्यों के आधार पर हुए आकलन की आती है तो दुनिया में हमारा स्थान बहुत पीछे रह जाता है। आमतौर पर लोकतंत्र सूचकांक की वैश्विक रैंकिंग में जिन देशों को त्रुटिपूर्ण गणतांत्रिक चेतना का देश माना जाता है, उनमें भारत भी एक है। भारत में शासकीय कार्यप्रणाली और राजनीतिक संस्कृति में बेहतरी की आवश्यकता बताई गई है। अतः विचार और जवाबदेही के इस चौराहे पर आम्बेडकर के इस बयान को दोहराना ज़रूरी है कि ‘‘संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, उसे लागू करने वाले ग़लत होंगे तो संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाएगी।’’

आज इस बात पर मंथन करने की आवश्यकता है कि हमारा देश कैसा गणतंत्र है? और यहां कैसा गणतंत्र होना चाहिए? सवाल यह भी है कि यहां का गणतंत्र, वास्तव में ‘गण’ यानी लोगों की, लोगों के द्वारा, लोगों के हित में संचालित व्यवस्था है? यदि हां तो फिर देश के नागरिकों को अपने साझा अधिकारों एवं हितों के लिए संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है? नागरिकों को उनके मौलिक कर्तव्य क्यों याद दिलाने पड़ रहे हैं? नागरिक कौन होगा; कौन नहीं? यह तय करना, स्वयं नागरिकों के हाथों में क्यों नहीं है?

गणतंत्र दिवस सच पूछिये तो यह याद करने का दिन है कि अब हम साम्राज्यों या कि राजे-महाराजाओं के

शासन के दौर से बाहर निकल आए हैं और आगे संविधान की व्यवस्था के तहत निर्वाचित प्रतिनिधियों के बनाए नियम-क़ानूनों द्वारा शासित होंगे। जानकारों की भाषा में कहें तो यह ख़ुद के द्वारा ख़ुद पर शासन होगा, जिसमें निर्वाचित प्रतिनिधियों को जनादेश के अधीन रहकर हर तरह की मनमानी से परहेज़ करना होगा।

इतना ही नहीं, उन्हें भारतीय गणतंत्र के उस संकल्प को परम पवित्र मानकर चलना होगा, जो उसकी प्रस्तावना में वर्णित है और जिसमें कहा गया है कि यह संविधान हमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा हम सबमें व्यक्ति की गरिमा व राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के उद्देश्य को समर्पित होगा। 'ख़ुद ही शासक ख़ुद की शासित' की इस स्थिति में किसी के कहे या बताए बिना भी समझा जा सकता है कि संविधान का यह उद्देश्य तभी पूरा होगा, जब देशवासी उसे आधे-अधूरे नहीं बल्कि पूरे मन से अंगीकृत व आत्मार्पित कर सम्यक रूप से अपने आचरण में उतारेंगे। इसके बग़ैर अधिनियमित होने के बावजूद वह औपचारिकता से वास्तविकता तक की अपनी यात्रा की सारी बाधाएं नहीं दूर कर पाएगा।

यहां सवाल स्वाभाविक है कि गणतंत्र के सात से ज़्यादा दशकों के गुज़र जाने के बाद यह सब याद दिलाने का क्या तुक है? इसका जवाब बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के इन शब्दों में है कि इसके बग़ैर संविधान अस्तित्व में तो रह सकता है, लेकिन अस्तित्व की गुणवत्ता या स्तर नहीं प्राप्त कर सकता। इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि इन सात से ज़्यादा दशकों में देश में सरकारें कितनी भी और किसी की भी क्यों न आई गई हों, संविधान का शासन अपनी गुणवत्ता के वांछित स्तर की प्राप्ति के लिए तरसता ही रहा है। निःसंदेह, इसीलिए संविधान के निर्माताओं द्वारा उसके सच्चे शासन के लिए नागरिकों से जो न्यूनतम अपेक्षा की गई है, वह यह कि वे सच्चे अर्थ में नागरिक बनें, संविधान के तहत मिले अपने अधिकारों व कर्तव्यों को ठीक से समझें और उनके पालन के प्रति जागरूक रहें। विडम्बना यह है कि अभी भी देश के नागरिकों का बड़ा हिस्सा इसकी पूरी जानकारी से महरूम है कि संविधान बना तो उसमें उन्हें सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे। ये हैं–समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म, संस्कृति एवं शिक्षा की स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार। इनमें संपत्ति के अधिकार को 1978 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा मौलिक अधिकारों की सूची से निकाल दिया गया, इसलिए अब वह महज़ क़ानूनी अधिकार है, जबकि शेष छह मौलिक नागरिक अधिकार बने हुए हैं।

संविधान के तहत राज्य का दायित्व है कि वह इन अधिकारों की किसी भी तरह के अतिक्रमण से रक्षा करे, ताकि सारे नागरिकों की समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित लोकतांत्रिक सिद्धांतों की रक्षा के संवैधानिक उद्देश्य का रास्ता निर्बाध बना रहे। अलबत्ता, संविधान इन अधिकारों को संपूर्ण नहीं क़रार देता इसलिए वे सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए आवश्यक उचित प्रतिबंधों के अधीन हैं और उन्हें संविधान के बुनियादी ढांचे का उल्लंघन न होने की सीमा तक घटाया या बढ़ाया जा सकता है–संसद

आज हम भारत को दुनिया का सबसे बड़ा गणतंत्र बताते हुए गौरव का अनुभव करते हैं, लेकिन बात जब गणतांत्रिक मूल्यों के आधार पर हुए आकलन की आती है तो दुनिया में हमारा स्थान बहुत पीछे रह जाता है। आमतौर पर लोकतंत्र सूचकांक की वैश्विक रैंकिंग में जिन देशों को त्रुटिपूर्ण गणतांत्रिक चेतना का देश माना जाता है, उनमें भारत भी एक है। भारत में शासकीय कार्यप्रणाली और राजनीतिक संस्कृति में बेहतरी की आवश्यकता बताई गई है।

के प्रत्येक सदन में दो तिहाई बहुमत से पारित संवैधानिक संशोधन द्वारा।

दुर्भाग्य से हम अभी भी नागरिकों के बड़े हिस्से को इन अधिकारों के प्रति सचेत नहीं कर पाए हैं। हमारे इस 'न कर पाने' की भरपाई मौलिक कर्तव्यों के प्रति उनका अनुराग जगाकर की जा सकती थी, लेकिन इस अनुराग की स्थिति अधिकारों के प्रति जागरूकता के अभाव से भी बुरी है।

प्रसंगवश, संविधान के अनुच्छेद 51 (क) एवं भाग 4 (क) में नागरिकों के ग्यारह मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है और अपेक्षा की गई है कि वे उन्हें निभाएंगे। इनमें पहला कर्तव्य संविधान को सर्वोच्च मानकर उसके आदर व अनुपालन और साथ ही तिरंगे व राष्ट्रगान के सम्मान से जुड़ा है, जबकि अन्य कर्तव्यों में राष्ट्र की एकता, अखंडता, संप्रभुता, विचारधारा, **आदशरे**, मूल्यों, संस्कृतियों, सामाजिकताओं, प्राकृतिक संपदाओं और सार्वजनिक संपत्तियों वग़ैरह की रक्षा, संरक्षण, वृद्धि व सम्मान की बात कही गई है। इसी तरह स्वतंत्रता के लिए बलिदान करने वाले सेनानियों और सहजीवी नागरिकों के अधिकारों के आदर, वैज्ञानिक मानदंडों में विश्वास और ज्ञान के नये क्षेत्रों के विकास व वृद्धि भी नागरिकों के कर्तव्य हैं। जो नागरिक माता या पिता हैं, उनका अलग से एक कर्तव्य गिनाया गया है। यह कि वे अपने छह से चौदह साल के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के लिए स्कूल अवश्य भेजेंगे।

ग़ौरतलब है कि 1976 में संविधान में 42वें संशोधन द्वारा निर्धारित इन नागरिक कर्तव्यों का पालन बहुत कठिन भी नहीं है, लेकिन जागरूकता के अपेक्षित स्तर के अभाव में 'उत्तरदायित्व समझकर' इनका 'अनिवार्य रूप से पालन करने' के संवैधानिक निर्देश के बावजूद नागरिकों के 'कर्तव्यबोध' में कोई गुणात्मक बदलाव आता नहीं दिख रहा।

निःसंदेह यह स्थिति नागरिकों को संवैधानिक अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जानकार व जागरूक बनाने के ऐसे बड़े देशव्यापी सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान की मांग करती है, जिसमें उन्हें संविधान के गुणों व मूल्यों से भी यथेष्ट रूप से अवगत कराया जाए। डॉ. अम्बेडकर के इस कथन के आईने में कि संविधान के तहत बहुमत के शासन का नियम उतना पवित्र नहीं है, जितना समझा जाता है। इस शासन को सिद्धांत के रूप में नहीं बल्कि नियम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

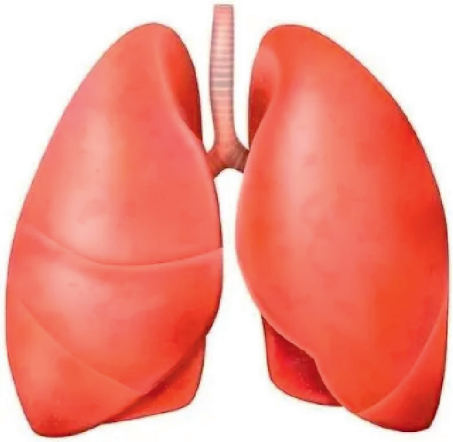
आज इस बात पर मंथन करने की आवश्यकता है कि हमारा देश कैसा गणतंत्र है? और यहां कैसा गणतंत्र होना चाहिए? सवाल यह भी है कि यहां का गणतंत्र, वास्तव में 'गण' यानी लोगों की, लोगों के द्वारा, लोगों के हित में संचालित व्यवस्था है? यदि हां तो फिर देश के नागरिकों को अपने साझा आधिकारों एवं हितों लिए संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है? नागरिकों को उनके मौलिक कर्तव्य क्यों याद दिलाने पड़ रहे हैं? नागरिक कौन होगा; कौन नहीं? यह तय करना, स्वयं नागरिकों के हाथों में क्यों नहीं है?

इसलिए हमारे जैसे बहुलताओं व विविधताओं वाले देश में राज्य को जटिल विवादों को सुलझाने के लिए सर्वसम्मति का नियम ही अपनाना चाहिए। जूरी पद्धति के अनुसार, जिसमें कोई निर्णय तभी बाध्यकारी होता है, जब सर्वसम्मति से किया गया हो।

अतः निष्कर्ष रूप में यह भी कहा जा सकता है कि हम संवैधानिक गणतंत्र तो हैं, किंतु लोकतांत्रिक गणतंत्र होने के लिए हमें अपनी चाल, चरित्र और व्यवहार में अभी बहुत कुछ बेहतर करना बाक़ी है। क्या करें? आइए, 74वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर हम, भारत की जनता इस पर विचार करें।

■■

फेफड़ों को दें राहत की सांस





सर्दियों में सांस संबंधी समस्याओं के मामले बढ़ जाते हैं। विशेषज्ञ इसके चार कारण बताते हैं, पहला, जब तापमान में गिरावट आनी शुरू हो जाती है, तब श्वास नलिकाएं थोड़ी सिकुड़ जाती हैं, जिससे सांस लेने में परेशानी होती है। दूसरा, ठंडी और सूखी हवा बीमार फेफड़ों को ही नहीं स्वस्थ फेफड़ों को भी नुक़सान पहुंचाती है। तीसरा, श्वसन तंत्र को संक्रमित करने वाले वायरस और बैक्टीरिया इस मौसम में अधिक सक्रिय रहते हैं। चौथा, स्मोग (स्मोक फॉग) के कारण प्रदूषण का स्तर बाक़ी मौसमों की तुलना में इस समय अधिक होता है। प्रदूषित वायु श्वास नलिकाओं और फेफड़ों के सीधे संपर्क में आती हैं तो उनके ऊतकों की कोशिकाओं के डीएनए को नुक़सान पहुंचता है, जिससे वो क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, आज विश्व की 91 फ़ीसदी जनसंख्या उन क्षेत्रों में रह रही है, जहां वायु प्रदूषण तय सुरक्षा सीमाओं से अधिक है। प्रदूषित वायु में लंबे समय तक सांस लेने से फेफड़ों की क्षमता और कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। वे समय से पहले बूढ़े होने लगते हैं। उनके रोगों की चपेट में आने का ख़तरा बढ़ जाता है।

डब्ल्यूएचओ की इंटरनेशनल एजेंसी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर (आईएआरसी) के अनुसार, वायु प्रदूषण,



फेफड़ों के कैंसर के प्रमुख कारणों में एक है। बीते वर्षों में दमा, सीओपीडी और श्वसन तंत्र से जुड़ी समस्याएं धूम्रपान नहीं करने वालों में भी बढ़ रही है। देश में फेफड़े के कैंसर के शिकार लोगों में से लगभग 50 फ़ीसदी धूम्रपान नहीं करते हैं। जो प्रदूषक वायु को विषैली बनाते हैं, उनमें पार्टिकुलेट मैटर (पीएम), ओजोन, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड व सल्फ़र डाई ऑक्साइड प्रमुख हैं। 10 और 2.5 माइक्रॉन से कम व्यासवाले पीएम बहुत हानिकारक होते हैं। ये सांस के द्वारा फेफड़ों में प्रवेश करते हैं और ख़ून में मिल जाते हैं। पीएम 2.5 की लगभग 20 मिलिग्राम मात्रा फेफड़ों को एक सिगरेट जितना नुक़सान पहुंचाती है।

फेफड़ों को मज़बूत और स्वस्थ कैसे रखें

फेफड़ों को मज़बूत और स्वस्थ बनाए रखना समग्र स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। हमारे फेफड़े रक्त को ऑक्सीजन देने और कार्बन डाईऑक्साइड को हटाने के लिए ज़िम्मेदार महत्वपूर्ण अंग हैं। फेफड़ों की उचित देखभाल श्वसन संबंधी समस्याओं को रोक सकती है और जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा सकती है।

फेफड़ों का स्वास्थ्य अनुवांशिकी, पर्यावरण और जीवनशैली सहित विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है। फेफड़ों के कार्यों को सुनिश्चित करने के लिए, श्वसन स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाली आदतों को अपनाना आवश्यक है। फेफड़ों के स्वास्थ्य को बनाए रखने

के लिए निम्न उपायों को अपनाया जा सकता है–

1. धूम्रपान से बचें

धूम्रपान कैंसर के प्रमुख कारणों में से एक है। फेफड़ों के कैंसर से बचने के लिए धूम्रपान से बचें। धूम्रपान से दूर रहना आपके फेफड़ों को मज़बूत और स्वस्थ रखने के लिए महत्वपूर्ण क़दम हैं। अगर आप धूम्रपान करते हैं, तो छोड़ने में मदद के लिए संसाधन और सहायता लें।

2. नियमित शारीरिक गतिविधि में शामिल हों

नियमित व्यायाम फेफड़ों की क्षमता और समग्र श्वसन क्रिया को बेहतर बनाने में मदद करता है। पैदल चलना, तैरना और साइकिल चलाना जैसी गतिविधियां ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाकर और श्वसन की मांसपेशियों को मज़बूत करके फेफड़ों के स्वास्थ्य को बेहतर बना सकती हैं। प्रति सप्ताह कम से कम 150 मिनट मध्यम-तीव्रता वाले व्यायाम का लक्ष्य रखें।

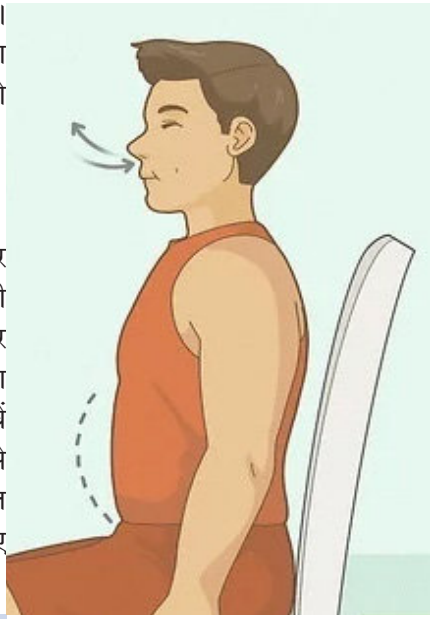


3. स्वस्थ आहार बनाए रखें

एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन और खनिजों से भरपूर संतुलित आहार फेफड़ों के स्वास्थ्य का समर्थन करता है। फल, सब्जियां, मेवे और साबुत अनाज जैसे खाद्य पदार्थ आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं जो सूजन से लड़ते हैं और ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाते हैं। ओमेगा 3 फैटी एसिड मछली में पाया जाने वाला विटामिन सी श्वसन क्रिया को भी सहायता प्रदान कर सकता है।

4. अच्छी वायु गुणवत्ता की आदतें अपनाएं

वायु प्रदूषण और घर के अंदर एलर्जी के संपर्क में आने से श्वसन संबंधी समस्याओं को रोका जा सकता है। एयर प्यूरीफायर का उपयोग करें, उच्च प्रदूषण वाले दिनों में बाहरी गतिविधियों से बचें और अपने घर को धूल और फफूंद से मुक्त रखें। अच्छा वेंटिलेशन और नियमित सफ़ाई स्वस्थ इनडोर वायु गुणवत्ता बनाए रखने में मदद कर सकती है।



5. हाइड्रेटेड रहना

फेफड़ों की म्यूकोसल परत को बनाए रखने और श्वसन संक्रमण को रोकने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी पीना ज़रूरी है। अपने फेफड़ों को नम रखने और उन्हें ठीक से काम करने के लिए दिन भर में पर्याप्त पानी पिएं।

6. श्वास संबंधी व्यायाम करें

सांस लेने के व्यायाम फेफड़ों की क्षमता और दक्षता को बढ़ा सकते हैं। डायाफ्रामटिक श्वास और पर्स्ड-लिप श्वास जैसी तकनीकें वायु प्रवाह और ऑक्सीजन विनिमय को बेहतर बनाने में मदद करती हैं। फेफड़ों के बेहतर स्वास्थ्य के लिए इन व्यायामों को अपनी दिनचर्या में शामिल करें।

7. नियमित जांच करवाएं

नियमित चिकित्सा जांच से संभावित फेफड़ों की समस्याओं का जल्द पता लगाने में मदद मिल सकती है। यदि आपको सांस संबंधी समस्याओं का इतिहास है या फेफड़ों की बीमारी का ख़तरा है, तो नियमित निगरानी और जांच आवश्यक है। अपनी स्वास्थ्य देखभाल से परामर्श लें व्यक्तिगत सलाह के लिए प्रदाता।

अपने फेफड़ों को मज़बूत और स्वस्थ रखने के लिए जीवनशैली विकल्पों और सक्रिय उपायों का संयोजन आवश्यक है। हानिकारक पदार्थों से बचकर, नियमित व्यायाम करके, संतुलित आहार बनाए रखकर और अच्छी वायु गुणवत्ता की आदतों का अभ्यास करके, आप फेफड़ों को स्वस्थ और मज़बूत रख सकते हैं। हाइड्रेटेड रहें, सांस लेने के व्यायाम करें और दीर्घकालिक फेफड़ों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए नियमित जांच करवाएं। ये क़दम उठाने से एक स्वस्थ, अधिक जीवंत जीवन जीने में योगदान मिलेगा। ■■



मोती से चमकाएं भविष्य

आज भी जानकारी के अभाव में युवा पीढ़ी कई अति लाभदायक बिजनेस को अपनाकर लाभ कमाने का मौक़ा चूक जाती है। पारंपरिक बिजनेस में उतना मुनाफ़ा नहीं होता। साथ ही कंपटीशन के कारण ऐसे बिजनेस को चलाना मुश्किल भरा होता है। इससे निजात पाने के लिए आपको लीक से हटकर बिजनेस आइडिया ढूंढ़ना होगा। तो आइए, ऐसे ही ख़ास बिजनेस आइडिया के बारे में जानते हैं। इसमें बहुत कम इन्वेस्टमेंट कर आप भी मोटा मुनाफ़ा कमा पाएंगे।

यहां जिस बिजनेस की चर्चा की जा रही है, वह मोती की खेती (Pearl Farming) है। इस बिजनेस में सीप का पालन किया जाता है। दरअस्ल, मोती एक प्राकृतिक रत्न है, जो सीप से पैदा होता है। बाहरी कणों के सीप के अंदर प्रवेश करने से मोती का निर्माण होता है। लाभ की दृष्टि से यह बिजनेस आपके लिए काफ़ी अच्छा विकल्प है। बता दें कि इसकी खेती तालाब में होती है। आप तालाब ख़ुद खुदवा सकते हैं या किसी से किराये पर ले सकते हैं। अगर आप किराये पर तालाब लेते हैं, तो 50-60 हज़ार रुपये में यह बिजनेस शुरू कर सकते हैं।

तालाब की ज़रूरत

मोती की मांग घरेलू ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भी हमेशा बनी रहती है। इस बिजनेस में मुनाफ़े को



देखकर कई लोग आज इसकी कृत्रिम खेती करने लगे हैं। अगर आप वैज्ञानिक तरीक़े से और ट्रेनिंग लेकर मोती की खेती करते हैं, तो अच्छी गुणवत्ता वाली मोती पा सकते हैं। आज कई संस्थान इसकी ट्रेनिंग दे रहे हैं। मोती की खेती के लिए सबसे अनुकूल समय अक्टूबर से दिसंबर तक माना जाता है। इसकी खेती के लिए आपको तालाब की ज़रूरत होगी। कृत्रिम मोती को आप अपनी इच्छा के अनुसार आकार, रंग-रूप दे सकते हैं।

यहां से ख़रीदें सीप

आप सरकारी संस्थानों या फिर मछुआरों से सीप खरीदकर खेती शुरू कर सकते हैं। आपको सबसे पहले सीपों को खुले पानी में 2 दिन के लिए रखना होता है। इसके बाद में धूप और हवा लगने के बाद सीप का कवच और मांसपेशियां ढीली हो जाती हैं। मांसपेशियां ढीली होने के बाद सीप की सर्जरी कर सीप के अंदर सांचा डाला जाता है। जब यह सांचा सीप को चुभता है, तो वह इस पर अपने अंदर से निकलने वाला एक पदार्थ छोड़ता है। यही सांचा मोती का रूप ले लेता है। आप 12-14 महीने में तालाब से मोती प्राप्त कर सकते हैं।

आमदनी

आपको बता दें कि मोती की क़ीमत उसकी गुणवत्ता के हिसाब से तय होती है। आप बाज़ार में एक मोती को 120 रुपये से लेकर 200 रुपये तक में

बेच सकते हैं। एक एकड़ के तालाब में आप कम से कम 25000 सीपियां डाल सकते हैं। इस पर करीब 8 लाख रुपये का ख़र्च आता है। अगर हर एक सीप से दो मोतियां निकलती हैं, तो भी आप ख़र्च निकालकर लाखों रुपये की कमाई कर सकते हैं। आपको बता दें कि डिज़ाइनर मोती के लिए अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में 10,000 रुपये तक मिल सकते हैं।

अगर आप भी नौकरी के साथ कोई बिजनेस करने की सोच रहे हैं या आपको पूरी तरह नया बिजनेस शुरू करना है तो ये आइडिया आपके काफ़ी काम आ सकता है। हम बता रहे हैं मोती की खेती (Pearl Farming) के बारे



में। पानी में किया जाने वाला ये बिजनेस आपको आसमान की ऊंचाइयों तक पहुंचा सकता है। थोड़ी-सी ट्रेनिंग लेकर कोई भी मोती की खेती के ज़रिये अपनी क़िस्मत चमका सकता है। सरकार की तरफ़ से भी मोती की खेती करने के लिए सब्सिडी दी जा रही है।

अगर आप 50-100 मीटर लंबाई-चौड़ाई वाला तालाब बनवाते हैं, जिस पर क़रीब 60-70 हज़ार रुपये का ख़र्च आ जाएगा। इसमें 25 हज़ार सीप को आसानी से पाला जा सकता है। बाज़ार में एक सीप की क़ीमत 15-25 रुपये होती है, अगर 20 रुपये का औसत पकड़ लें तो 5 लाख के सीप डालने होंगे। इसके बाद पानी, भोजन व अन्य उपकरणों पर भी मोती तैयार होने तक क़रीब 2-3 लाख का ख़र्चा आ जाएगा। 12-15 महीने में सीप से मोती बनकर तैयार हो जाएगा। यह समय, वातावरण और रख-रखाव के लिहाज़ से कम या ज़्यादा भी हो सकता है। विशेषज्ञ बताते हैं कि कुल सीप में से क़रीब 40 फ़ीसदी ख़राब हो जाते हैं। ऐसे में अगर आपने 25 हज़ार सीप डाले थे, तो आपको क़रीब 15 हज़ार सीप से मोती मिलेंगे।

कैसे होगी शुरुआत?

इसकी खेती शुरू करने के लिए आपको बजट के अनुसार तालाब चाहिए, जिसकी गहराई क़रीब 12 फ़ुट होनी चाहिए। पानी की बेहतर व्यवस्था रखनी होगी, क्योंकि मोती बनाने वाले सीप ज़्यादा पीएच (PH) वाले पानी में ज़िंदा नहीं रह पाते हैं। आपको पानी का PH वैल्यू 7 के आसपास ही रखना होगा। सीप के लिए भोजन की व्यवस्था करनी होगी और समय-समय पर उनकी स्थिति की जांच भी करते रहना होगा।

ऐसे बनता है सीप से मोती

सबसे पहले सीप को 2 से 3 दिन के लिए खुले पानी में डाला जाता है ताकि सीप के ऊपर का कवच और उसकी मांसपेशियां नरम हो जाए। अगर

इसकी खेती शुरू करने के लिए आपको बजट के अनुसार तालाब चाहिए, जिसकी गहराई क़रीब 12 फुट होनी चाहिए। पानी की बेहतर व्यवस्था रखनी होगी, क्योंकि मोती बनाने वाले सीप ज़्यादा पीएच (PH) वाले पानी में ज़िंदा नहीं रह पाते हैं। आपको पानी का PH वैल्यू 7 के आसपास ही रखना होगा। सीप के लिए भोजन की व्यवस्था करनी होगी और समय-समय पर उनकी स्थिति की जांच भी करते रहना होगा।

सीपों को ज़्यादा समय के लिए पानी से बाहर रखा गया तो ये ख़राब हो सकती हैं। मांशपेशियों में नरमी आने के बाद मामूली सर्जरी से उसकी सतह पर 2 से 3 मिलीमीटर के छेद करते हैं, जिसमें रेत का छोटा-सा कण डालते हैं। इसके बाद 2 से 3 सीप को नायलॉन के जालीदार बैग में रखकर तालाब में बांस या पाइप के सहारे पानी में लटका दिया जाता है।

यहां से ले सकते हैं ट्रेनिंग

मोती की खेती करने के लिए ट्रेनिंग ज़रूरी है, जिसे इंडियन काउंसिल फॉर एग्रीकल्चर रिसर्च के तहत बने विंग सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ्रेश वॉटर एक्वाकल्चर से लिया जा सकता है। यहां मोती की खेती के लिए 15 दिनों की ट्रेनिंग दी जाती है। इसके अलावा आप भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद में भी संपर्क कर सकते हैं। ■■

कहानी



जैनेंद्र कुमार

अपना-अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गए। नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रूई के रेशे-से भाप-से, बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अंधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफ़ेद और फिर देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था। सामने अंग्रेज़ों का एक प्रमोद-गृह था, जहां सुहावना-रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियां अपने सफ़ेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर और उधर से इधर खेल रही थीं और कहीं कुछ अंग्रेज़ एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को, मानो शर्त बांधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी पानी में डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिंतन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियां मारते हुए हॉकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौच भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम



खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विधा लगाकर मानों ख़त्म कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिंता न थी, बीते का ख़्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की संपूर्ण सच्चाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहां जा रहा था, और कहां से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के, सब तरह के लोग उसमें थे। मानों मनुष्यता के नमूनों का बाज़ार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज़ उसमें थे और चिथड़ों से सजे घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गए हैं।

भागते, खेलते, हंसते, शरारत करते लाल-लाल अंग्रेज़ बच्चे थे और पीली-पीली आंखें फाड़े, पिता की उंगली पकड़कर चलते हुए अपने हिंदुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अंग्रेज़ पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हंस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुज़ुर्गी को अपने चारों तरफ़ लपेटे धन-संपन्नता के लक्षणों का प्रर्दशन करते हुए चल रहे थे।

अंग्रेज़ रमणियां थीं, जो धीरे-धीरे नहीं चलती थीं, तेज़ चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हंसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठ सकती थीं और घोड़े के साथ ही साथ, ज़रा जी होते ही, किसी हिंदुस्तानी पर कोड़े भी फटकार सकती थीं। वे दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में, निश्शंक, निरापद इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मियां, सड़क के बिल्कुल किनारे-किनारे, दामन बचातीं और संभालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमटकर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आंख गाड़े, क़दम-क़दम बढ़ रही थीं।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरचकर बहा देने की इच्छा करनेवाला अंग्रेज़ी-दां पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिवों को देखकर मुंह फेर लेते थे और अंग्रेज़ को देखकर आंखे बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वे अकड़कर चलते थे मानों भारतभूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

दो

घंटे के घंटे सरक गए। अंधकार गाढ़ा हो गया। बादल सफ़ेद होकर जम गए। मनुष्यों का वह तांता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं के वहीं बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गए थे।

पीछे फिरकर देखा। यह लॉन बर्फ़ की चादर की तरह बिल्कुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था। तल्लीलाल की बिजली की रोशनियां दीप-मालिका सी जगमगा रही थीं। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिंबित हो रही थी। और दर्पण का कांपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह जल प्रतिबिंबों को सौ-गुना, हज़ार-गुना करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र और पुंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनियां तारों-सी जान पड़ती थीं।

"मेरे कई छोटे भाई-बहिन हैं,— सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था, माँ भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था,— मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। वह अब नहीं हैं।"

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढंक दिया। रोशनियां मानों मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वे काले-काले भूत-से पहाड़ भी इस सफ़ेद पर्दे के पीछे छिप गए। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इस घनी गहरी सफ़ेदी में दब गया। एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संस्कृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर-नीचे, चारों तरफ़ वह निर्भेद्य, सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था। मार्ग अब बिल्कुल निर्जन, चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में कहीं से, ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा।

जैसे कहीं दूर क़ब्र में से आवाज़ आ रही हो!

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिए।

तीन

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गए। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवरकोट तर हो गए थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहां तो ऊपर-नीचे हवा से कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कंबल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिल्कुल किनारे पर बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुंचकर, इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गर्म बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, कब थमेगी—इसका क्या कुछ ठिकाना है! और वह कैसी क्या होगी—इसका भी कुछ अंदाज़ है! उन्होंने कहा—आओ, ज़रा यहां बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे उस भीगी बर्फ़ली, ठंडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गए।

5-10-15 मिनट हो गए। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने खिझलाकर कहा–

"चलिए भी..."

"अरे ज़रा बैठो भी..."

हाथ पकड़कर ज़रा बैठने के लिए जब इस ज़ोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा—लाचार बैठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था, और यह ज़रा बैठना ज़रा न था।

चुप-चुप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले–

"देखो, वह क्या है?"

मैंने देखा—कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली सी सूरत हमारी तरफ़ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा—होगा कोई।

तीन गज की दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता चला आ रहा है। नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली-सी क़मीज़ लटकाए है।

पैर उसके न जाने कहां पड़ रहे थे, और वह न जाने कहां जा रहा है—कहां जाना चाहता है! उसके क़दमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायां है, न बायां है।

पास ही चुंगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है। आंखें अच्छी बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियां खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ़ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाक़ी दुनिया। वह बस, अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—ऐ!

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

"तू कहां जा रहा है रे?"

उसने अपनी सूनी आंखें फाड़ दीं।

"दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

"कहां सोएगा?"

"यहीं कहीं।"

"कल कहां सोया था?"

"दुकान पर।"

"आज वहां क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना!"

"फिर नौकरी करेगा?"

"हां..."

"बाहर चलेगा?"

"हां..."

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा?"

"नहीं मिलेगा।"

"यूं ही सो जाएगा?"

"हां..."

"कहां?"

"यहीं कहीं।"

"इन्हीं कपड़ों से?"

बालक फिर आंखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आंखें मानो बोलती थीं—'यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न!'

"मां-बाप हैं?"

"हैं।"

"कहां?"

"पंद्रह कोस दूर गांव में।"

"तू भाग आया?"

"हां!"

"क्यों?"

"मेरे कई छोटे भाई-बहिन हैं,—सो भाग आया। वहां काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था, मां भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गांव का था,—मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहां आए। वह अब नहीं हैं।"

"कहां गया?"

"मर गया।"

इस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई!—मुझे अचरज हुआ, दर्द हुआ, पूछा—"मर गया?"

"हां, साहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुंचे।

"वकील साहब!"

वकील लोग होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आए। कश्मीरी दोशाला लेपेटे थे, मोज़े-चढ़े पैरों में चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ-हो, फिर आप!—कहिए?"

"आपको नौकर की ज़रूरत थी न? देखिए, यह लड़का है।"

"कहां से लाए?—इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूं—यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाए कहीं से—'लो जी, यह नौकर लो'।"

"मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी...जी, बस ख़ूब है। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाए, अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चंपत हो जाए!"

"आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूं!"

"मानें क्या, ख़ाक?—आप भी... जी अच्छा मज़ाक़ करते हैं।

...अच्छा, अब हम सोने जाते हैं।"

और वे चार रुपए रोज़ के किराए वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गए।

चार

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है?"—मैंने पूछा।

"इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था", अंग्रेज़ी में मित्र ने कहा—"मगर, दस-दस के नोट हैं।"

"नोट ही शायद मेरे पास हैं;—देखूं?"

सचमुच मेरे जेब में भी नोट ही थे। हम फिर अंग्रेज़ी में बोलने लगे। लड़के के दांत बीच-बीच में कटकटा उठते थे।—कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा—"तब?"

मैंने कहा—"दस का नोट ही दे दो।" सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे—"अरे यार, बजट बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं हैं।"

"तो जाने दो; यह दया ही इस ज़माने में बहुत है।"—मैंने कहा।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले–

"अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल—डी पव' जानता है? वहीं कल 10 बजे मिलेगा?"

"हां...कुछ काम देंगे हुज़ूर?"

"हां, हां, ढूंढ़ दूंगा।"

"तो जाऊं?"—लड़के ने निराश आशा से पूंछा।

"हां," ठंडी सांस खींचकर मित्र ने कहा—"कहां सोएगा?"

"यहीं-कहीं; बेंच पर, पेड़ के नीचे—किसी दुकान की भट्ठी में।"

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला–कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया।मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की क़मीज़ मिली! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था। पर बताने वालों ने बताया कि ग़रीब के मुँह पर, छाती मुट्ठी और पैरों पर बर्फ़ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठंडे कफ़न का प्रबंध कर दिया था!

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—"भयानक शीत है। उसके पास कम—बहुत कम कपड़े...!"

"यह संसार है यार!" मैंने स्वार्थ की फिलासफ़ी सुनाई—"चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिंता करना।"

उदास होकर मित्र ने कहा—"स्वार्थ!—जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो—या बेहयाई!"

***

दूसरे दिन नैनीताल-स्वर्ग के किसी काले ग़ुलाम पशु के दुलारे का वह बेटा—

वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डी पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताली सैर ख़ुशी-ख़ुशी ख़त्म कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठे रहने की ज़रूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला—कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे, ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की क़मीज़ मिली! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि ग़रीब के मुंह पर, छाती मुट्ठी और पैरों पर बर्फ़ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठंडे कफ़न का प्रबंध कर दिया था!

सब सुना और सोचा—अपना-अपना भाग्य! ■■

संपूर्ण समर्पण की सीधी राह

धर्म का नाम लेकर कुछ स्वार्थी लोगों ने इतना अधर्म और अन्याय किया है कि बहुत से लोग अब धर्म के नाम से ही डरने लगे हैं, बल्कि धर्म ही को समाज में बहुत-सी ख़राबियों और आपसी नफ़रत और हिंसा का कारण मानने लगे हैं। यह भी सत्य है कि कुछ स्वार्थी लोगों ने धर्म की आड़ में अपना या एक वर्ग का वर्चस्व क़ायम करने और रखने के षड्यंत्रकारी प्रयास किए और उनके द्वारा समाज को ऊंचे नीचे कई तबक़ों में बांटने और उनमें आपस में नफ़रत फैलाकर समाज को तोड़ने और अपने आपको मज़बूत करने का प्रयास आज तक जारी है।

यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि इन्सानों को बांटने वाला, समाज को तोड़ने वाला, इन्सानों के बीच ऊंचे और नीचे का भेद करने वाला धर्म हो ही नहीं सकता। सच्चा धर्म (जो हमेशा से ही रहा है) इन्सानों को तोड़ता नहीं बल्कि जोड़ता है। आज बुरे लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, बुराइयों को फैलाने के लिए, अन्याय और अत्याचार करने वाले, नफ़रत फैलाने और समाज को बांटने वाले संगठित हैं। अतः समाज को बचाने एवं इसे सही दिशा में ले जाने के लिए अच्छे लोग, सच्चे धार्मिक लोग, धर्माचार्यों को संगठित होकर कम से कम उन मुद्दों पर समाज में जागृति का काम करना चाहिए जिन पर सबकी सहमति है।

विभिन्न धर्मों में कुछ आधारभूत



मूल्य एवं पारलौकिक धारणाएं लगभग समान रूप से पाई जाती हैं। इस अद्भुत सृष्टि, अनंत ब्रह्मांड, आश्चर्यजनक मानव संरचना और सभी श्रेष्ठ चीज़ों में मौजूद व्यवस्था पर विचार करने से यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि सारी सृष्टि का एक ही स्रष्टा है जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी, सर्वज्ञानी, अत्यंत दयावान और कृपाशील है। सर्वशक्तिमान ईश्वर हमेशा से है और जब सारी सृष्टि नष्ट हो जाएगी सिर्फ़ वही होगा।

विभिन्न धर्मों में बिगड़े हुए रूपों में इन आधारभूत पारलौकिक धारणाओं का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर ने सारी मानवता के मार्गदर्शन के लिए अपने ईशदूतों एवं संदेशाओं के माध्यम से मार्गदर्शन के लिए जो संदेश दिया उसका मूल एक ही है।

वह ईश्वर हमारा जीवनदाता है। मृत्यु भी उसी के अधिकार में है। वह हम से इतना परिचित और निकट है जितने हम भी अपने आपके निकट और हम भी अपने आप से परिचित नहीं। वह दयावान ईश्वर हमारी हर चीज़ से अच्छी तरह परिचित है। यहां तक कि वह हमारे मन व मस्तिष्क में उठने वाले विचारों तक से परिचित है। वह हमारे इरादों और नियतों को भी अच्छी तरह जानता है। उस ईश्वर के समक्ष हम सबको मृत्यु के बाद एक दिन अवश्य हाज़िर होना है और उसके द्वारा दिए गए इस अमूल्य जीवन के एक-एक पल के एक-एक कर्म का हिसाब देना है।

उस दिन वह किसी पर भी ज़रा भी अन्याय नहीं करेगा। हरेक को उसके कर्मों के अनुसार बदला देगा जो लोग उस पर विश्वास रखते हुए उसके द्वारा दिखाए गए सन्मार्ग और मार्गदर्शन के अनुसार जीवन व्यतीत करेंगे उन्हें वह स्वर्ग (जन्नत) में जगह देगा और जो इस जीवन में उसके मार्गदर्शन को छोड़कर अपने मन की इच्छाओं के ग़ुलाम बनकर रहे होंगे नरक (जहन्नम) के पात्र होंगे।

विभिन्न धर्मों में बिगड़े हुए रूपों में इन आधारभूत पारलौकिक धारणाओं का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर ने सारी मानवता के मार्गदर्शन के लिए अपने ईशदूतों एवं संदेष्टाओं के माध्यम से मार्गदर्शन के लिए जो संदेश दिया उसका मूल एक ही है।

यह सारी मानव जाति उस दयावान ईश्वर का परिवार है। जब ईश्वर एक है सारी मानव जाति एक है तो उसका संदेश अलग-अलग कैसे हो सकता है? उसकी दी हुई जीवन व्यवस्था एक ही हो सकती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि पूरी मानव जाति के लिए धर्म शुरू से एक ही था और एक ही है। हज़रत आदम (अलैहि.) से लेकर अंतिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) तक इस धरती पर एक लाख से अधिक ईशदूत आए और सभी ने ईश्वरीय आदेशों के आगे संपूर्ण समर्पण का रास्ता बताया। समर्पण के इसी रास्ते को अरबी भाषा में इस्लाम कहा जाता है।

बहुत सारे ईशदूत जिनके नाम पर लोगों ने अलग-अलग धर्म बना लिए, वे सभी ईश्वर के आगे समर्पण (यानी इस्लाम) ही का संदेश लेकर आए, यानी हज़रत इबराहीम (अलैहि.), हज़रत मूसा (अलैहि.) और हज़रत ईसा (अलैहि.), ये सभी इस्लाम के पैग़म्बर थे और हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) इस्लाम के सबसे अंतिम पैग़म्बर थे। कोई भी व्यक्ति उस वक़्त तक मुसलमान नहीं कहला सकता जब तक कि वह ईश्वर के तमाम पैग़म्बरों पर और उनके लाए हुए संदेश व तरीक़े पर विश्वास न करे। इस्लाम में चरित्र और नैतिकता का महत्त्व सर्वोपरी है।

चरित्र और नैतिकता का दिवालियापन ऐसा विषय है जिसे दूर किए बिना हमारी शिक्षा, आर्थिक व्यवस्था, विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति, राजनीतिक एवं न्याय व्यवस्था ठीक हो ही नहीं सकती। चरित्र और नैतिकता के आधार के बिना हमारी विज्ञान और तकनीकी प्रगति फ़ायदे से ज़्यादा नुक़सान पहुंचाएगी। देश को मज़बूत और सुदृढ़ बनाने का सपना मज़बूत नैतिक आधार के बिना पूरा होना संभव नहीं है। अगर हम भौतिक समृद्धि के महल को मज़बूत नैतिक आधार पर बनाने का प्रयास करें तो विश्वास है कि हम पूरी दुनिया के नायक एवं मार्गदर्शक बन जाएंगे। मगर यह मज़बूत नैतिक आधार एक ईश्वर पर विश्वास, उसके द्वारा भेजे गए मार्गदर्शन ईश्वर के सामने जवाबदेही का पूरा भरोसा, इस जीवन के बाद पारलौकिक जीवन पर यक़ीन और उस दयावान ईश्वर की ओर से पूरी मानव जाति के लिए दी गई जीवन व्यवस्था को अपनाए बिना संभव नहीं है।

हम सबको मिलकर ऐसे प्रयास करने और वातावरण तैयार करने की ज़रूरत है कि हर प्रकार के पूर्वाग्रह और पक्षपात से रहित होकर खुले दिल और दिमाग़ से यह जानने का प्रयास किया जाए कि हम सबके स्रष्टा, दयावान ईश्वर का मार्गदर्शन क्या है? सत्य तक पहुंचने की राह में जितने परदे, रुकावटें और दूरियां हैं उसको हटाने की कोशिश करना हम सबकी ज़िम्मेदारी है। हम सब में बहुत सारी समानताएं और बहुत सारे मूल विषयों पर सहमति होते हुए भी अजनबियत और दूरियां पाई जाती हैं, जिसका सबसे बड़ा कारण हमारे बीच संवाद का अभाव है और इसका लाभ उठाकर स्वार्थी और धर्म विरोधी लोगों ने धर्म का नाम लेकर हमारी दूरियों को बढ़ाने का प्रयास किया।

इसलिए यह भी आवश्यक है कि हम सब आपस में मिलने-जुलने, एक दूसरे की आस्थाओं और विचारों को जानने-समझने, साहित्य के आदान-प्रदान और समाज की बुराइयों और मूलभूत समस्याओं के हल के लिए मिल-जुलकर प्रयास करने का वातावरण तैयार करें ताकि सत्य तक पहुंचना सबके लिए आसान हो जाए।

सच्चे धार्मिक लोगों एवं धर्माचार्यों के बीच सद्भावनापूर्ण संवाद से भ्रम और अविश्वास दूर होगा, आपसी विश्वास बढ़ेगा, निराशा की जगह आशा का वातावरण पैदा होगा, हमारी दूरियां कम होंगी और निकटता बढ़ेगी। हम असत्य और अधर्म के अंधेरों से निकलकर सत्य की रोशनी की तरफ़ जाएंगे। ईश्वर हम सबकी सहायता करे और हमें अपना आज्ञाकारी बना ले, ताकि हम सब इस जीवन में भी सफल हों और वास्तविक और अनन्त पारलौकिक जीवन में भी हमें सफलता मिले।

सच्चे धार्मिक लोगों एवं धर्माचार्यों के बीच सद्भावनापूर्ण संवाद से भ्रम और अविश्वास दूर होगा, आपसी विश्वास बढ़ेगा, निराशा की जगह आशा का वातावरण पैदा होगा, हमारी दूरियां कम होंगी और निकटता बढ़ेगी। हम असत्य और अधर्म के अंधेरों से निकलकर सत्य की रोशनी की तरफ़ जाएंगे। ईश्वर हम सबकी सहायता करे और हमें अपना आज्ञाकारी बना ले, ताकि हम सब इस जीवन में भी सफल हों और वास्तविक और अनन्त पारलौकिक जीवन में भी हमें सफलता मिले। हमें अपने स्रष्टा की निकटता मिल सके और वह हम से राज़ी एवं प्रसन्न हो। ■■

रमज़ान का महीना वह है जिसमें क़ुरआन उतारा गया लोगों के मार्गदर्शन के लिए, और मार्गदर्शन और सत्य-असत्य के अन्तर के प्रमाणों के साथ। अतः तुममें जो कोई इस महीने में मौजूद हो उसे चाहिए कि उसके रोज़े रखे और जो बीमार हो या सफ़र में हो तो दूसरे दिनों में गिनती पूरी कर ले। अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी चाहता है, वह तुम्हारे साथ सख़्ती और कठिनाई नहीं चाहता, (वह तुम्हें हिदायत दे रहा है) और चाहता है कि तुम संख्या पूरी कर लो और जो सीधा मार्ग तुम्हें दिखाया गया है, उस पर अल्लाह की बड़ाई प्रकट करो और ताकि तुम कृतज्ञ बनो।

(क़ुरआन, 2:185)

with best compliment from

J.I.H., Piro, Bhojpur, [Bihar]

KANTI Monthly, New Delhi
JANUARY 2025
Posted on 20-21 December 2024
Published on 18 December 2024
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2024-2026
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2024-26
Total Pages with Cover: 52

2025

JANUARY

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

FEBRUARY

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	

MARCH

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30	31					

APRIL

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30			

MAY

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

JUNE

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

JULY

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

AUGUST

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

SEPTEMBER

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

OCTOBER

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

NOVEMBER

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30						

DECEMBER

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			